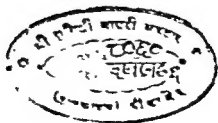


—सोष्टिप

श्री कृपालु सिंह रावत द्वारा यह
पुस्तक "वित्तपरीक्षा" (आलोचनात्मक
अध्ययन) श्री पुखरी नागरी भण्डार
स्तोत्रालय को भेंट की गयी

कृपालु सिंह रावत
श्री. रा. उतराष्ट्र (हिंदी)
होम गृह विभाग,
लीकामेर
१५/११/६६



विमोह गुणन क मन्दिर

काशीन : शिवेश शिवेश मः, भाग्य-३

विभी-नेष्ट : द्वाविंशत शेर, भाग्य-३

⑤ विमोह गुणन क मन्दिर, भाग्य

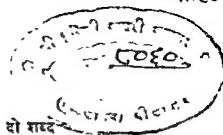
भाग्य मन्दिर १ ११५२

गुण्य : ३ ००

पुण्या प्रिटिंग प्रेस, भाग्य-२

• प्रिटिंग प्रेस, भाग्य-२

[१५२७५]



लोकप्रिय महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिभा और कला का अध्ययन एवं विवेचन अनेक अविद्यार्थी विद्वानों ने किया है। उन सबके आलोचना-ग्रन्थों में लाभ उठाकर, एम० ए० और साहित्यरत्न के छात्रों के हितार्थ प्रस्तुत पुस्तक में 'विनयप्रसिद्धा' की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक को सभी हस्तिनी से छात्रोपदेशी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है, इसलिए विषय का विधाजनक व्याख्यान में न करके प्रश्नोत्तर में किया गया है। भाषा-शैली को भी सरलसरल रखकर एवं बोध-मध्य बनाने की चेष्टा की गई है। आशा है, पाठक-जन इस कृति से लाभार्जित करेंगे।

अन्त में, मैं आचार्य कान्दली पाण्डेय, आचार्य रामचंद्रोरी हुक्म, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० आनाप्रसाद मुखर्जी, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, डा० रामचन्द्र भट्टनायर, तथा श्री लक्ष्मणभुक्तार कपूरदेवी आदि विद्वानों के उचित आभार प्रकट कर रहा हूँ, जिनकी कृपियों के अध्ययन से मैंने इस पुस्तक को निरूपण में लाभ उठाया है।

—रामचन्द्रोपास वर्मा 'हिनेट'

मधीन संस्करण

इस संस्करण में प्रस्तुत कृति का आदि से अन्त तक सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न छोड़े गए हैं। आशा है, संस्करण का मैंने यह अध्ययन छात्रों के लिए अतिवृत्ति कर दिया होगा।

—रामचन्द्रोपास वर्मा 'हिनेट'

प्रश्न-सूच

प्रश्न

- १—‘विनयपत्रिका’ में प्राप्त सामग्री के आधार पर तुमसी के जीवन पर संक्षेप से प्रकाश डालिए ।
- २—प्रतिपाल की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सिद्धान्तोक्तन करते हुए ‘विनयपत्रिका’ की रचना के मूल में निहित युग-भ्रष्टता का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ।
- ३—उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर ‘विनयपत्रिका’ की रचना-शक्ति निर्धारित कीजिए ।
- ४—“विनयपत्रिका में तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों का दर्शावट बिजल मिलता है ।” उपर्युक्त उद्धरण देखर उस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए ।
- ५—‘विनयपत्रिका’ के प्रमुख कर्ष्य-विषय क्या हैं ? संक्षेप में प्रायेक पर विचार कीजिए ।
- ६—संक्षेप में ‘विनयपत्रिका’ की विनय-महति पर सोदाहरण विचार कीजिए ।
- ७—उपर्युक्त उद्धरण देखे हुए ‘विनयपत्रिका’ के अन्तर्गत तुमसी के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।
- ८—प्रतिपालीन जन-जीवन की प्रमुख समस्या क्या थी ? समाजीन दार्शनिक दृष्टियों में निहित उस समस्या के विभिन्न समाधानों पर संक्षेप से प्रकाश डालते हुए ‘विनयपत्रिका’ में तुमसी द्वारा प्रकट किए गए उनके समाधान पर विचार कीजिए ।
- ९—‘विनयपत्रिका’ में तुमसी ने राम को किस रूप में चित्रित किया है ? सोदाहरण विवेचन कीजिए ।

प्रान

- १०—तुलसी के जगत्, जीव एवं ब्रह्म-विषयक विचारों को सोसाहरण स्पष्ट कीजिए ।
- ११—मिड कीजिए कि “विनयनत्रिका यथाक्रम से रचा हुआ विनय का एक महारवूर्ण बाध्य है ।”
- १२—मिड कीजिए कि “विनयनत्रिका भक्तों के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसके भीतर दिखाई देती है ।”
- १३—“विनयनत्रिका में तुलसी के दैव्य-भाव की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति मिलती है ।” इस कथन पर विचार से विचार कीजिए ।
- १४—“विनयनत्रिका की भाषाभिव्यक्ति पर तुलसी की अत्यन्त बुद्धि में अभिव्यक्त भावों का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है ।” इस कथन की समझ पर सोसाहरण विचार कीजिए ।
- १५—‘विनयनत्रिका’ के भाव-मोक्षार्थ की विचार से सोसाहरण समीक्षा कीजिए ।
- १६—‘विनयनत्रिका’ को मात्र प्रशंसा-काव्य मानने से अथवा मुक्त काव्य ? सर्वपूर्वक माने मन का प्रतिपादन कीजिए ।
- १७—‘रस’ की दृष्टि से ‘विनयनत्रिका’ की आलोचना कीजिए ।
- १८—‘विनयनत्रिका’ में कवि पूर्णतः प्रकृति-विषय की ओरता नहीं कर सका ।” इस कथन की समीक्षा पर सोसाहरण विचार कीजिए ।
- १९—“विनयनत्रिका की भाषा में तुलसी के ज्ञान-ज्ञान, भाव-गुण, अर्थ-मोक्ष, उल्लिखित एवं मोक्ष-मोक्ष के आधार पर कथन तथा मुद्राओं के प्रयोग को सुझाना का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है ।” यह कथन उद्धरण लेकर इस कथन का आलोचनात्मक मित कीजिए ।
- २०—‘विनयनत्रिका’ की अन्तर्गत-विषय पर लक्षण से प्रमाण लायिए ।
- २१—‘विनयनत्रिका’ का लक्षण विषयक अनुभव करने हुए ‘विनयनत्रिका’ का अन्तर्गत विषय कीजिए ।

२३—“विनयपत्रिका तुलसी के वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य की अद्भुत नमूना है।” इस कथन का विचार-से विवेचन कीजिए।

२४—“विनयपत्रिका” में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और मानुरता का राग सर्वत्र बसाया है। क्या इस ग्रन्थ की आत्म-चरित-प्रशान कहा जा सकता है ? यदि नहीं, तो हम ग्रन्थ का उद्घाटन कीजिए।

२५—“विनयपत्रिका” से उपयुक्त उद्धरण देकर सिद्ध कीजिए कि तुलसी का माधु-मल्ल वाग्मय में सोव-हिन का प्रतिपादक है।

२६—वे तीन-सी बिजेवनाई हैं, जिनके कारण “विनयपत्रिका” तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है ?

२७—“विनयपत्रिका” का मुख्य उद्देश्य क्या है, और हम कार्य में कवि को कहीं तक सफलता मिली है ?

२८—“विनयपत्रिका” में तुलसी की जो भक्ति-भावना व्यक्त हुई है, उसकी “छन्दसीत” के रचयिता मूर की भक्ति-भावना से संश्लेष में तुलना कीजिए।

२९—“विनयपत्रिका” में तुलसी की विचारधारा—शीर्षक पर एक निबंध लिखिए।

३०—वाग्मयता की दृष्टि से संश्लेष में “विनयपत्रिका” की मान्यता कीजिए।

३१—“विनयपत्रिका” में तुलसी की लम्बे-समय की कविता का जो रूप उपजाव है, उसे आकाशवाणीद्वारा उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

३२—हिन्दी-साहित्य में “विनयपत्रिका” के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का क्या स्थान निर्धारित कीजिए।

३३—भक्ति की परम्परा पर विचार करते हुए, उनमें “विनयपत्रिका” का स्थान निर्धारित कीजिए। ●

विनयपत्रिका

प्रश्न १—'विनयपत्रिका' से प्राप्त सामग्री के आधार पर तुमसीदास के जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।

उत्तर—भक्तिराम का भक्त-कवि अपने काव्य की रचना 'स्वान्त.मुत्तम' करता था । लौकिक सुख-भोग की अपेक्षा पारलौकिक सुख की ओर उसका अधिक ध्यान रहता था । 'यथा' और 'अर्थ' का अर्थन वह अपनी कविता से नहीं करता था । उसकी आत्मा काव्य में अभिव्यक्त होकर, उसे अलौकिक आनन्द में लीन कर देती थी । अतः वह अपने व्यक्तित्व को भूल कर भगवान् के साथ 'तदाकार' हो उठता था । ऐसी स्थिति में उसका परिचय वही होता था, जो उसके भगवान् का परिचय है । जब भक्त और भगवान् अनन्य-अलग नहीं, तब भक्त का अलग से परिचय क्या ? अतः ही भक्तिराम का कवि पारिवर्त माता-पिता के बिना अस्तित्व को प्राप्त न कर सका हो; फिर भी वह तो 'राम' नाम के दो बंधनों को ही अपना माता-पिता मानता था—“मेरे तो माय-बाप दोउ आकार ही सिमू-अरनि करो ।”—(वि० प० : २२६) । अपने वैयक्तिक जीवन के प्रति अपने काव्य में ऐसी उद्देशा भक्तिराम के दुबे या परवान् के किसी कवि में दृष्टिकोण नहीं होती । भक्तिराम के कवि के वैयक्तिक जीवन-विषयों की हमारे काव्य में प्रायः उद्देशा मिलती है । यन्-उन् को स्पष्ट उदाहरण दिये जा सकते हैं, वे भी भगवान् के निकट अपने हृदय की किसी निमग्न भावना को अभिव्यक्ति के लिए ही हैं । अतः भक्ति-राम के किसी भी कवि का परिचय उसकी कविताओं में सरलतापूर्वक प्राप्त नहीं किया जा सकता । 'सरलता' से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कोई भी भक्ति-वासीन कवि अपने जीवन पर प्रकाश डालने नहीं बैठा । अत्यन्तः जो सामग्री उसकी रचनाओं में उपलब्ध होती है, उसी को लेकर उसके विषय में कुछ जाना जा सकता है । तुमसीदास जी के

विषय में तो यह तथ्य और भी अधिक सत्य सिद्ध होता है। उनकी रचनाओं में हमें उनके जीवन की जानने के लिए प्रत्यक्षतः कोई सामग्री नहीं मिलती। जहाँ-तहाँ भक्ति के आवेश में कही गई उक्तियों को संकलित करके ही हम उनके आधार पर कवि के विषय में कुछ कह सकते हैं। विनयपत्रिका में यह सामग्री इतनी कम तथा अप्रत्यक्ष हो गई है कि सहज में उसका संकलन भी नहीं किया जा सकता। पाठकों को उसे समझने के लिए एक विशेष दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है।

सामान्यतः हम विनयपत्रिका में तुलसी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का निम्नांकित शीर्षकों में विभाजन कर सकते हैं—

- (१) जन्म और शैशव का परिचय देने वाली सामग्री।
- (२) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी सामग्री।
- (३) गृह-स्थान और पर्यटन सम्बन्धी सामग्री।
- (४) जीवन के कष्ट अनुभवों का परिचय देने वाली सामग्री।
- (५) स्वभाव एवं आचरण पर प्रकाश डालने वाली सामग्री।
- (६) जीवन के ध्येय को व्यक्त करने वाली सामग्री।
- (७) अन्तिम जीवन की प्रकाश में लाने वाली सामग्री।

उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत विनयपत्रिका के आधार पर तुलसी के जीवन को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है—

(१) जन्म और शैशव—तुलसी की विनयपत्रिका के किसी भी पद से यह पता नहीं चलता कि वे कहाँ, कब तथा किसके घर पैदा हुए थे। शायद उन्होंने अप्रत्यक्षतः भी ऐसी कोई बात कहने की आवश्यकता नहीं समझी, जिससे वे 'राम' के अतिरिक्त किसी 'अन्य' के प्रतीत हों। जब राम ही उनके 'सर्वस्व' थे, तब वे और किसको 'अपना' बतलाते? केवल अपने परिवार की ओर उन्होंने कुछ सकेंत निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर

हेतु जो फल चारि को।

—(वि० प०, पद १३५)

इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'सुकुल' शब्द को लेकर किसी ने उम्हे 'शुक्ल' माना है, किमी ने सनाढ्य ब्राह्मण बतलाया है और उसके आधार पर यह सिद्ध किया कि इनका जन्म 'शुक्ल ब्राह्मण परिवार' में हुआ था। वस्तुतः धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष—चारों फलों को प्रदान कराने वाले 'सु-कुल' अर्थात् सुन्दर परिवार में इनका जन्म हुआ था। इतना ही इसका तात्पर्य हो सकता है, और उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे, क्योंकि ब्राह्मण का ही एक ऐसा सुन्दर 'कुल' है जो धर्म-पूर्वक जीविकायें वित्त प्राप्त करके मोक्ष-हेतु 'कामना' करता है।

उसके पश्चात् तुलसी के शैशव का परिचय देने वाली जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसमें उनके नाम का संकेत देने वाली निम्नांकित पंक्ति का विशेष महत्त्व है—

राम को तुलाम, नाम रामबोला, राख्यो राम

इस पंक्ति के आधार पर कुछ आलोचकों ने इनका बचपन का नाम 'रामबोला' माना है। परन्तु 'राख्यो राम' वाक्यांश की ओर विशेष ध्यान देने पर एक अन्य संकेत भी मिलता है। वह यह कि 'नाम' रामबोला' तुलसी का बचपन का नाम लभी माना जा सकता है, जबकि हय 'राख्यो राम' की अलग ही इस अर्थ में व्याख्या करें कि "राम ने मुझे रखा—मेरी रक्षा की।" अर्थात् बचपन में मेरा नाम 'रामबोला' था और 'राम ने मेरी रक्षा की'। तब सहज में यह आशय निकल जाता है कि "बचपन में ही तुलसी राम का नाम बोलने लगे थे, अतः उनका नाम 'रामबोला' पड़ा एवं किसी बारणदास के अनाथ हो गए तब राम ने ही उनकी रक्षा की।" तुलसी ने विनयपत्रिका में एक अन्य पद में लिखा भी है—

जननि जनक तग्यो जननि,

बरम विधिहुँ सृग्यो अबड़ेरे।

विद्वानों ने 'तग्यो' शब्द का यह अर्थ लगाया है कि माता-पिता ने तुलसी को जन्म देने ही त्याग दिया था। इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि तुलसी अशुक्त मूल नरत्न में पैदा हुए थे, इसलिए माता-पिता ने उनको कुल के लिए अशुभ और अमंगलकारी माना था। परन्तु 'तग्यो' शब्द का एक अन्य आशय यह भी लिया जा सकता है कि वे तुलसी को 'छोड़ गए' अर्थात् स्वयंवासी हो गए। माता-पिता अशुक्त मूल नरत्न में पैदा होने पर जो बातचीत की निर्दम बनकर घर से बाहर नहीं छोड़ सकते। उनका पुत्र से अपनी मृत्यु की दशा में ही त्याग सम्भव हो सकता है। "तनु तग्यो कुटिम पीट ज्यो तग्यो मानु पिता हूँ"—पंक्ति से भी यहो ध्वनि निकलती है। अतः विनयपत्रिका से तुलसी के

प्रारम्भिक जीवन के विषय में यह ज्ञात होता है कि उनका जन्म एक उक्त याज्ञिक कुल में हुआ था। माता-पिता इनके जन्म के कुछ समय परचाः स्वर्ग सिधार गए थे। अनाथ होकर 'राम' नाम की शरण से लेने के कारण इनका नाम 'रामचोला' पड़ गया, क्योंकि विधिपूर्वक इनका नामकरण संस्कार भी (माता-पिता के अभाव में) सम्भव न हो सका। राम ही उस अनाथावस्था में इनके रक्षक थे।

(२) पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी सामग्री—इस प्रकार की सामग्री विनय-पत्रिका में प्रत्यक्षतः नहीं मिलती। केवल अप्रत्यक्ष रूप में ही माद-लण्डों को सँजोकर उनके पारिवारिक जीवन के विषय में कुछ कहा जा सकता है। यथा, वे लिखते हैं—

सरिकाई बीती अचेत चित
 खंचलता बीगुनी चाय ।
 जीवन लुर जुपती कुपम्प करि
 भयो प्रियोस भरि मदन बाध ॥

इससे यह आशय लिया जा सकता है कि बाल्यावस्था से यौवन तक का इनका जीवन व्यर्थ ही बीत गया। इनको युवती का सम्पर्क मिला; अर्थात् विवाह हुआ और ये वासना का शिकार बन गये। गुरु से जब इनका सम्पर्क हुआ तो मानो इन्हें राज-मार्ग मिल गया—

गुरु कह्यो राम-भजन लीको ।
 मोहि लागत राज कतरो सो ।

इससे प्रतीत होता है कि इनका परिवार, जन्म के परिवार तक सीमित नहीं रहा। इनका सम्बन्ध गुरु एव राम से हुआ।

(३) गृह-त्याग और पर्यटन—तुलसी ने एक अग्न्य स्थान पर लिखा है—

दुखित देखि संतन कह्यो,
 सोचैं जानि मन माहूँ ।

तोसे पशु पाँवर पातकी परिहरे न,
 सरन गए रघुबर और निबाह ।

स्पष्ट है कि घर से अनाथ हो, बाहर निकल जाने वाले तुलसी विवाह के भी अधिक समय तक घर नहीं रहे। उन्हें तो फिर एक बार दुखी होकर सन्तों की शरण लेनी पड़ी। कहा जाता है कि तुलसी की पत्नी ने उन्हें

फटकारा और राम-भक्ति की प्रेरणा दी, परन्तु 'विनयपत्रिका' में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता । उपर्युक्त पक्तियों से यह भाव अवश्य निकलता है कि वे दुखी होकर घर से जब बाहर आए तो सन्तो ने उन्हें राम-भक्ति का सुन्दर सुखद मार्ग बता दिया । 'विनयपत्रिका' में यह संकेत भी मिलता है कि उन्होंने चित्रकूट एवं काशी का पर्यटन किया—

अथ चित्तेति चित्रकूटहि धनु ।

× × ×

सेइय सहित सनेह देह भरि

कामधेनु कलि कासी ।

× × ×

चित्रकूट की चरित्र सेतु चित्त करि सो ।

(४) जीवन के कटु अनुभवों का परिचय देने वाली सामग्री—तुलसी को अपने जीवन में सात्त्विक सुख नहीं मिला । वे अनेक प्रकार के कष्टों की भाग में जलते रहे । 'विनयपत्रिका' में इन तथ्य का समर्थन करने वाली अनेक पक्तियाँ मिलती हैं; यथा—

काल कलि-बाध-सताप-सकुल सदा,

अनत तुलसीदास तात-माता ।

× × ×

साँतति तुलसीदास बी मुनि सुजत तुही लं ।

× × ×

— बीन सब अग-हीन, दीन, अलीन, अपी, अयाइ ।

नाम लं भरै उदर प्रभु-दासो-दास कहाइ ॥

× × ×

घारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार बीन,

आनत ही चारि फल चारि ही बनक को ।

× × ×

— द्वार-द्वार बीनता बहो बाढ़ि यह चारि पाहें ।

(५) स्वभाव एवं आचरण पर प्रकाश डालने वाली सामग्री—तुलसी के स्वभाव की सरलता, विनम्रता एवं पवित्रता उनही विनयोक्तियों से स्पष्ट भलवती है । वे स्वतन्त्र विचारों के ध्वनि थे । वे निम्नते हैं—

सीग बहूँ पाँवु सो म सोष म संकोष मेरे ।

✓ व्याह न बरेसो जाति पति म पहत ही ।

तुलसी अकाम बान राम ही के रोभे सोभे ।

प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत ही ।

इससे स्पष्ट है कि वे किसी की कभी विन्या नहीं करते थे । उन्हें राम की भक्ति के सम्बन्ध में अपने ऊपर पूर्ण विश्वास था, अनः वे किसी के प्रश्रय या क्रुद्ध होने से कभी प्रभावित नहीं होते थे ।

वे अपने राम का विश्वास-बल पाकर सदा अमय रहते थे—

तुलसीदास रघुवीर करहु बल

सदा अमय कहूँ न डरै ।

उन्होंने अपने स्वभाव का स्वयं निरीक्षण भी किया था, और लिखा था—

राग-रोष-ईर्ष्या-वस दधी न साधु-मनीति ।

कहे न मुने गुन मन रघुवर के भई न रामपद प्रीति ॥

किन्तु इन पक्तियों में आरम-दोष-दर्शन की प्रयुक्ति को ही अधिक स्थान मिला है । वे अपने दोषों को बड़ा-बड़ा कर देना चाहते हैं । उन्होंने अपने आचरण के विषय में एक स्थान पर लिखा है—

बासत ही गई भीति निसा सब

✓ कयहूँ न नाथ ! नीद भरिसोयो ॥

उन्होंने अपनी हीनता को यहाँ तक अपनी बाणी से प्रकट किया है कि—

स्वारथ के साधिन्हु तज्यो तिजरा की सो

टोटक औघट उत्ति न हेरी ॥

(६) जीवन के ध्येय को व्यक्त करने वाली सामग्री—विनयपत्रिका में इस प्रकार की सामग्री पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है । उससे तुलसी के जीवन का ध्येय सरलता से जाना जा सकता है । वे राम की भक्ति करके जमज्वाल से मुक्ति तो पाना चाहते ही थे; साथ ही ससार के कल्याण के लिए राम-भक्ति का प्रचार भी करना चाहते थे । वे जीव को राम की अनन्त भक्ति-भावना में तन्मय करना चाहते थे । विनयपत्रिका के अनेक पदों से उनके जीवन का, भक्ति-साधना और उसके द्वारा ससार का कल्याण करने का यह ध्येय व्यक्त हुआ है—

राम नाम की प्रभाव जानि झूटि भागि है ।
 सहित सहाय कसिकास भोद भागि है ॥
 राम नाम सों बिराग जोय जप जागि है ।
 धाम विधि भास हू न कर्म दाग दागि है ॥

× × ×

राम जपु राम जपु राम जपु बायरे ।

घोर भय-भीर-निधि नाम निज नाय रे ॥

वे राम-भक्ति में पूर्णतः लीन रहना चाहते थे । उनकी कामना थी—
 बचट्टेक हों यह रहनि रहौंगे ।

और रघुनाथ-कृपालु कृपा से सन्तुष्ट शुभाव गहोंगे ॥

(७) अन्तिम जीवन की प्रकाश में लाने वाली सामग्री—इस प्रकार की सामग्री भी विनयपत्रिका में अधिक नहीं है । जो सकेत मिलते हैं, उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि तुलसी बृद्धावस्था में भी बहुत दुःख रहे । सत्सार ने उनके प्रति किसी प्रकार की धृष्टा नहीं दिखाई, अभय उन द्वार-द्वार मटकने को बाध्य न होना पड़ता । उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि उन दीन तथा वित्तहीन अवस्था में तथा बिना आश्रय की दशा में राम की ही एकमात्र शरण भूमि थी । अतः वे बार-बार यही प्रार्थना करते थे—

कतहुं नाहि ठाउं, कहैं धाहैं कोसलनाथ ।

दीन वित्तहीन हौं, विकल बिनु डेरे ॥

इसीलिए उन्हें विनयपत्रिका लिखनी पड़ी थी । बृद्धावस्था में लिखी उनकी उस विनयपत्रिका को राम ने स्वीकार किया, और इस प्रकार जगज्जाल से मुक्त हुए । किन्तु यह भुक्ति उन्हें कब मिली, इसका कोई सबूत विनयपत्रिका में नहीं मिलता । “सो प्रगट तप जरजर जरायस” “सिर क इन्द्रिय सक्ति प्रतिहत” तथा “रटन रटत घटघी, जाति-पाति भाति घटघी”—आदि पक्तियों से यह सकेत अवश्य मिलता है कि वे बृद्धावस्था तक जीवित रहे ।

सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि विनयपत्रिका में तुलसी जीवन की एक आकाशमय झलकी ही हमें मिलती है, ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने वाली पक्तियाँ उपलब्ध नहीं होती । विनयपत्रिका तो क्या, तुलसी किसी भी अन्य कृति से उनके जीवन का पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकना

तक सम्भव नहीं हो सका। अतः शोधकों को उनके जीवन-परिचय का विवरण तैयार करने के लिए अनेक अन्य बाह्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। विनयपत्रिका की सामग्री उस दिशा में केवल संकेत-भर करती है।

प्रश्न २—भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन करते हुए विनयपत्रिका की रचना के मूल में निहित युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—महाकवि तुलसीदास की प्रतिभा अद्वितीय थी—इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। आधुनिक काल तक हम हिन्दी-साहित्य में उनको टक्कर का अन्य कवि नहीं देखते। ऐसे महान् कवि ने, जो अपने श्रीरामचरित-मानस में 'नाना पुराण निगमागम' के ज्ञान का परिचय देता है, राम-कथा को छोड़ अन्य किसी विषय को अपनी अनुभूति का प्रधान अंग क्यों नहीं बनाया, शिव-भावेंती या कृष्ण को लेकर क्रमशः पार्वती-मंगल या कृष्ण-गीतावली जैसी लघु पुस्तकों की रचना भी यद्यपि उसने की, तथापि इन पुस्तकों के विषयों में उसकी वृत्ति अधिक नहीं रही। उसका ध्यान सर्वथा राम-चरित पर ही रहा, ऐसा न करने के लिए भी कवि को उसकी जिन अन्तर्वृत्तियों ने बाध्य किया—उनकी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि क्या थी? इस पृष्ठभूमि को समझे बिना हमें तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में उठाए गए पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। विनयपत्रिका में उन्होंने रामकथा को भी छोड़ दिया है और राम की महिमा के सागर में ही डूबते-उतराते रहे हैं। उसमें बाह्य कथा की अपेक्षा तुलसी की अपनी आन्तरिक ध्याना और भावना को स्थान मिला है। अतः इस विशेषता को भी तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि तुलसी के युग को न समझ लिया जाय।

जिस युग में उन्होंने साहित्य सृजन किया, उसे भक्तिकाल के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ संक्षेप में इस काल की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को स्पष्ट करके 'विनयपत्रिका' के मूल में निहित युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा की जायगी।

राजनीतिक परिस्थिति

तुलसी का जन्म जिस युग में हुआ, उस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर मुगल-वंश का अधिकार था। अकबर कपट-नीति से समस्त देश को अपने अधिकार में कर, उत्तर से सुदूर दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक मुगल-

साधारण्य का विस्तार करना चाहता था । उसने राजपूतों से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके तथा आकस्मिकतानुसार युद्धों की परस्पर चलाकर राजपूतों को अपने बल में करना प्रारम्भ कर दिया था । अनेक हिन्दू-राजा उसके विमर्शण को खींचार कर उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे । मुसलमनों की साम्राज्य-विस्तार-तिष्ठा ने पहचाना प्रताप जैसे वीर को बलवान् घटवने को बाध्य कर दिया था । कोई भी स्वाधीनतापूर्वक सिर उठा कर नहीं चल सकता था । जो मुगल सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, उनका शाही दरबार में सम्मान होता था । किसी सामन्त के घर जाने पर उसके अधिकार की जाती मूलतः-जोप की दृष्टि में सहृदय होनी थी । उस वाय से, जो विस्तार बढ़ना का रहा था, राज-भवन में निर्बाध विस्तार चलता था । राज-वर्षावाली साम्राज्य की बिलासिता का साम उठाते थे और अपने शक्ति में मनमानी करते थे । साम्राज्यविस्तार के लिए जो युद्ध होने थे, उनमें अपार जन-हत्या घट-नृपि होती थी एवं उसके कुटिलतामय प्रयास को भोगने पड़ते थे । बिलामों की मूल-धनीने की बगल का अधिकार राजकोष में जाता था और उसका साम्राज्य की जान-जीवत की दृष्टि की जाती थी, रोज सड़क बाल बाले दुड़ो का लक्ष्य पुरा दिया जाता था । जनता अपने बच्चों को सुनाने के लिए बड़ी बड़ियाहों से बादशाह तक पहुँच पाती थी, क्योंकि उस तरह पहुँचने से पूर्व उसे अनेक छोटे-छोटे अधिकारियों के द्वार पार करने पड़ते थे । बहोलीर ने श्राव्य करने की चेष्टा भी की, किन्तु अकबर के समय से बनी जाने वाली म.वादा की आन्तरिक दुर्गहों को वह नहीं समझ पाया और न समझ ही कर सका ।

धार्मिक परिस्थिति

इसमें से जहाँ ही मुसलमान अपने धर्म के प्रचार में लगे रहते थे । मुस्लिम-राज्यों की शक्ति उनकी सहायता कर रही थी । अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में शिष्टता का परिचय देकर दूर दूर हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया था और उनके विश्वास-मार्ग पर धार्मिक विरोध मिटाने की चेष्टा भी की थी । किन्तु उसका मुख्य ध्येय मुसलमान धर्म का प्रचार करना ही था । उनमें हिन्दुओं के विश्वास-मार्ग और उनके धर्म की कुछ बातों को समझने के लिए 'दर-इ-अर-इ-हिन्द' की सम्पादन की तथा स्वयं भी इसी-वसी हिन्दू धर्म में रुचि रखी ।

हिन्दुओं की आन्तरिक स्थिति बड़े भी शोचनीय थी। परस्पर विरोधी विभिन्न मत और सम्प्रदाय उगरी जहाँ गोंगली कर रहे थे। उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक गमना देश में विभिन्न धर्म-नामनाओं का प्रचार था और वे सब आपस में संपर्क-रत थीं। धर्म के मूल सिद्धांत भूलकर हिन्दू-जनता अल्पविश्वासों का शिकार हो रही थी। नींव, शास्त्र, वैष्णव, नायपंथी-हठयोगी आदि सब आपस में सड़-भगड़ रहे थे। शंकों और वैष्णवों में तो यह संपर्क चरम सीमा तक आ पहुँचा था। मन्दिरों और मठों में घ्रष्टाचार पनप रहा था। स्त्रियों के साथ पाशाचार करने में पुजारियों और महन्तों को स्वर्ग का सुत दृष्टिगोचर होता था। धर्म-क्षेत्रीय स्वर्ग की कल्पना उनके मन्दिरों के बाहर अत्यन्त कहीं नहीं रह गई थी। हठयोगी, नायपंथी, अघोरी, औपद्र आदि साधु अनेक प्रकार के चमत्कारों का प्रदर्शन करके जनता की धर्म-बुद्धि को चकित कर रहे थे। निर्गुणोपासना का प्रचार बड़ी तीव्रता से हो रहा था। सामान्य जनता घट के भीतर ईश्वर को खोज सकने में असमर्थ हो निराशा के अल्पकार में भटनने लगी थी। निराकारोपासना का प्रचार करने वाले सगुणों की उल्टी-सीधी बातें समझ सकने के लिए न तो सामान्य जनता में बुद्धि थी और न सामर्थ्य।

धर्म एक पालण्ड बन गया था। धर्म के नाम पर समस्त देश में अगणित अत्याचारों का बोलबाला था। वर्णाश्रम-धर्म की कठोरता ने हिन्दू-धर्म की नींव हिला दी थी। शंकराचार्य के तत्त्व-दर्शन को सामान्य जनता न तो समझ सकती थी और न वह व्यवहार की ही वस्तु थी। बौद्ध धर्म की बुराईयाँ विभिन्न रूपों में भारतीय धार्मिक जीवन को विपाक बनाने में अत्यन्त योग देने के लिए मीथित बली आ रही थीं। इसलिये धर्म के लिए अनुकूल वातावरण पाकर शासन की सहायता से मुस्लिम-मोलवी प्रचार-कार्य में प्रयत्नशील थे। किन्तु उनका दृष्टिकोण भी निर्दोष न था। अतः उनके प्रयत्नों से भारतीय धार्मिक जीवन अत्यधिक कटु होता जा रहा था।

रामानुज, मध्व, निम्बार्क, बल्लभ आदि आचार्यों ने इस विषम धार्मिक स्थिति की मूल बुराईयों को बड़े ध्यान से समझा और अपने-अपने दृष्टि-कोण से उन्हें दूर करने की चेष्टा की। उन्होंने अपने भक्ति-सिद्धान्तों का किया और धर्म-क्षेत्रीय नीरस जीवन को भक्ति के रस से सरस बनाने चेष्टा की।

सामाजिक परिस्थिति

भक्तिकाल में समाज की दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। राजकीय अत्याचारों के कारण जन-जीवन विभिन्न प्रकार के दुःखों से भरा हुआ था। इस समय जनता मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित थी। एक वर्ग उन लोगों का था, जो धनी थे तथा जिनका शाही दरबार से सम्बन्ध था। दूसरा वर्ग सामान्य जनों का था, जो थम करके एवं अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर अपना पेट भरते थे। मुसलमान विस्वास का जीवन व्यतीत करते थे, और जनता आर्थिक उत्पीड़न तथा शोषण के निर्वाध घूमने वाले चक्र में पिस रही थी। मिश्रा-जीवियों की सदा निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि लोभो को प्रायः काम नहीं मिलता था। निम्न जातियों से बेगार भी ली जाती थी।

स्त्रियाँ भी धनी घरों में मजदूरी करने को बाध्य होती थीं। समस्त समाज अन्धविश्वासों से जकड़ा हुआ था। शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। फलतः अन्धविश्वास और रुढ़ियाँ बढ़ती जा रही थीं। मनुष्यों की बलि देकर अज्ञात शक्तियों को प्रसन्न करने में लोग विश्वास करते थे। समाज में उन्ही साधु-सन्तों की पूजा होती थी, जो चमत्कार दिखा सकते थे। दैवी प्रकोपों का ताँता बँधा हुआ था। प्रतिवर्ष कोई-न-कोई सकट देश पर आता ही रहता था। कभी अतिवृष्टि के कारण और कभी अनावृष्टि के फलस्वरूप दुर्भिक्ष पड़ जाता था। दुर्भिक्षों के समय जनता की प्राण-रक्षा के लिए शासन की ओर से कोई व्यवस्था नहीं हो पाती थी। दुर्भिक्षों के पश्चात् महामारी फैलती थी, जिसमें लोगों को उठाने वाले भी नहीं मिलते थे। अनेक प्रकार के कष्टों और सबडों के कारण जनता में आत्मशोच की भावना का अभाव हो गया था। नारियों को समाज में पशुवन् समझा जाता था। वे पति की मृत्यु हो जाने पर शव के साथ जल भरने की कमी-कमी विवश हो जाती थी। ईश्वरोपासना के नाम पर विभिन्न देवी-देवताओं, धीरों-पत्नीरों, सन्तों-महन्तों और पेश-पोषों तथा कीट-पतंगों तक की पूजा प्रचलित थी। बहने का आशय यह है कि भक्ति-काल की सामाजिक दशा सभी दृष्टियों से निराशाजनक थी।

विनयपत्रिका के मूल में युग-प्रेरणा

तुलसीदास जी जिस युग में पैदा हुए थे—उसही राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की चर्चा पीछे की जा चुकी है। इन परिस्थितियों में

उनके जीवन को पर्याप्त रूप में प्रभावित किया। विनयपत्रिका के मूल में हम उनके युग की परिस्थितियों को प्रेरणा पर्याप्त रूप में निहित पाते हैं। तुलसी ने युग की भयंकर परिस्थितियों से दुखी होकर ही उसे कलियुग का नाम दिया। 'श्रीरामचरितमानस' लिखकर उन्होंने अपने युग की सभी परिस्थितियों की भयंकरता मिटाने की चेष्टा की। पर से बाहर तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलन लाने के लिए उन्होंने राम के जीवन की आदर्श कथा तथा रामभक्ति का प्रचार किया। किन्तु युग की परिस्थितियों का प्रभाव 'श्रीरामचरितमानस' तक पूर्ण रूप से अपनी अभिव्यक्ति नहीं पा सका। एक कारण यह भी था कि 'मानस' में तुलसी युग के यथार्थ को स्पष्ट करने के स्थान पर आदर्श के मोह में अधिक पड़े रहे। किन्तु युग की परिस्थितियों की प्रेरणा इतने से सन्तुष्ट नहीं हो सकी। अतः तुलसी को 'विनयपत्रिका' लिखनी पड़ी। इस काव्य की रचना के मूल में हमें युग-प्रेरणा पर्याप्त रूप में निहित मिलती है।

तुलसी के युग का जन-समाज अत्यन्त दयनीय अवस्था में जीवित था। वह अपनी रक्षा के लिए अलौकिक शक्तियों से प्रार्थना कर रहा था, क्योंकि लोक में शासन-शक्ति के विभिन्न अत्याचारों से उसका जीवन अवर्णनीय कष्टों से भर गया था। अतः जनवाणी में ग्राहि-ग्राहि की ध्वनि गूँज रही थी। कातरता, अधीरता और वेदना से भरे जन-जीवन की वाणी ही विनयपत्रिका में साकार हुई है। तुलसी का जीवन जिस पीड़ा और कातरता से भरा हुआ है, वह वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक है। उसमें व्यक्ति के माध्यम से समस्त समाज बोल रहा है। तुलसी के युग की यह सबसे बड़ी प्रेरणा थी, जिसने कवि को समाज की व्यथा को अपनी व्यथा बनाकर राम के दरबार में विनयपत्रिका भेजने को बाध्य किया। सभी अलौकिक शक्तियों से शरण की जो प्रार्थना जनवाणी में ध्वनित हो रही थी, वही विनयपत्रिका में विभिन्न देवीदेवताओं की स्तुति के रूप में साकार हुई।

तुलसी ने अपने युग के अन्य कई कटु अनुभव किये थे। वे समाज में अन्तर्गत फैले हुए जाति-पाँति के भेद-भाव, साधुओं के चमत्कार आदि से भी गये थे। अतः उन्होंने विनयपत्रिका लिखकर उन सबका उत्तर देने की

किया। राम की भक्ति में तन्मय होकर कलियुग की पाई जा सकती है, यह समाज को बतलाना आवश्यक था कि जागतिक दुःखों का छट

कारा जिस प्रकार मिले । विनयपत्रिका में राम-भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया और कलि-पीडित जीवों को भक्ति का मार्ग मिला ।

तुलसी के युग में धर्म-साधना का स्वरूप पूर्णतः अस्थिर हो गया था । तुलसी को राम की अनन्य भक्ति का प्रतिपादन करने के लिए भी विनयपत्रिका लिखनी पड़ी । उसमें उन्होंने जन-आस्था पर प्रहार करने की अपेक्षा समन्वय का एक सर्वथाष्ट मार्ग निकाला । इसीलिए उन्होंने किसी देवी या देवता का विरोध करके बहुदेववाद का खण्डन नहीं किया, अपितु सबकी स्तुति करके अन्तिम सत्य 'राम' को प्राप्त करना घोषित किया । जिस प्रकार राजा के दरबार तक पहुँचने से पहले अन्य अनेक छोटे-बड़े अधिकारी मिलते हैं, उसी प्रकार देवी-देवता भी राजा राम के दरबार तक पहुँचने में मार्ग-गत अधिकारी हैं । तुलसी ने उनकी भी अपेक्षा नहीं की । इस प्रकार जनता का ध्यान अन्तिम साध्य 'राम' की ओर खींचा और उनकी महिमा का बखान किया । इस प्रकार बहुदेव-पूजा के अन्धकार में भटकने वाले लोगों को तुलसी ने राम के रूप में ईश्वर के शासन प्रकाश का दर्शन कराया । उन्होंने यही कुशलता से युग की अग्य आहम्बर-पूर्ण साधना-पद्धतियों की ओर से जनता का ध्यान खींचकर साधना का एक सुगम तथा सीधा मार्ग बनाने के लिए 'विनयपत्रिका' की रचना की । वस्तुतः यह तुलसी-युग की प्रेरणा का ही फल था कि विनय-पत्रिका तत्कालीन सभी समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करने के लिए सरस गेय पद-शैली में जनता के सामने आई ।

सारांश यह कि तुलसी सीधे-सादे भक्त-कवि थे । वे तत्कालीन साधु-संन्यासियों और योगियों के समान आहम्बर न तो कर सकते थे और न जानते ही थे । अतः जनता उन्हें चमत्कार दिखा सकने में असमर्थ पाकर अनेक प्रकार में तज्ञ करती रही । तुलसी को समाज की उस निन्दनीय मनोवृत्ति से ऊबकर राम से शरण की याचना करनी पड़ी और उनके दरबार में स्थान पाने के लिए विनयपत्रिका लिखनी पड़ी । तत्कालीन शासकीय अत्याचार, धार्मिक असन्तुलन तथा सामाजिक परिस्थिति—सबने मिलकर युग-प्रेरणा का ऐसा रूप धारण किया कि तुलसी को अपनी वेदना को 'विनयपत्रिका' का रूप देना पड़ा ।

प्रश्न ३—उपसर्ग प्रमाणों के आधार पर विनयपत्रिका की रचना-तिथि निर्धारित कीजिए ।

उत्तर—‘विनयपत्रिका’ की रचना-तिथि का पता पचाने के लिए विभिन्न प्रमाणों का संकलन आवश्यक है। तुलसी ने जान-भूझ कर इस काव्य में ऐसा कोई संकेत नहीं दिया, जिससे इसकी रचना-तिथि प्रत्यक्षतः ज्ञात हो सके। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी रचना-तिथि के सम्बन्ध में एक पद प्रस्तुत किया है, किन्तु उन्होंने स्वयं भी उस पद को अप्रामाणिक माना है। अतः उस आधार पर कुछ भी कह सकना कठिन है। वह पद इस प्रकार है—

भजि मन राम धरन दिन राती ।

राना कस न भजं तू हरि की वषों खंठी इठलाती ॥

जिनके कहत बहति दुख दारन गुनि भय ताप नसाती ।

लिखा सो सुजत तिया रघुवर को गुनि जुझाय हिय छाती ॥

संवत सोरह सैं इक्तीसा जेठ मास छवि स्वाती ।

तुलसीदास एक अरज करत है प्रथम विनय की पाती ॥

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने भी अपने ‘तुलसीदास’ ग्रन्थ में विनयपत्रिका की रचना-तिथि पर विचार किया है। उन्होंने लिखा है—

“यह ‘विनयपत्रिका’ पत्रिका के रूप में बनी और “करी रघुनाथ सही है” से सिद्ध है कि उनके जीवन में ही यह समाप्त हो गई। तुलसीदास ने इसमें यह भी लिखा है—

तुलसीदास अपनाहये कीर्ज न होल,

अथ जीवन अवधि अति मेरे ।

“जीवन अवधि अति मेरे” से वृद्धावस्था का बोध होता है, तो भी यहाँ कठिनाई यह है कि जीवन की अवधि का कोई ठिकाना नहीं। यह साठ वर्ष के उपरान्त तो प्रतिदिन आती हुई दिखाई देती है। विनयपत्रिका की जो प्रति संवत् १६६६ की मिली है, उसका नाम ‘रामगीतावली’ है। सारांश यह है कि ‘विनयपत्रिका’ की रचना उक्त संवत् १६६६ के अनन्तर ही हुई और इसके कुछ पद फलतः बने भी उसके उपरान्त ही। समय की स्थिति को एक ही पद में तुलसी ने बाँधकर रख दिया है—

धीन ब्यालु बुरिष धारित दुख,

हुनो दुसह तिहुँ ताप सई है ।

देव बुआर पुकारत आरत,

सबकी सब सुख हानि भई है ।

×

×

×

“इससे पाया जाता है कि इस पद की रचना किसी दुकाल के दूर होने पर ही हुई है। ऐसा दुकाल सन् १६५५ में पड़ा था, इसे हम देख चुके हैं। यदि यह ठीक है, तो इसके आधार पर कहा जा सकता है कि इसकी रचना १६५५ के उपरान्त ही हुई होगी।.....अनुमान से यही कहा जा सकता है कि विनय-पत्रिका के कुछ पद १६६६ वि० के बाद भी बनते रहे और अब सब मये बन गये तब ‘रामगीतावली’ को ‘विनयपत्रिका’ का रूप मिल गया।”

आचार्य चन्द्रबंसी पाण्डेय के उक्त मत में अनुमान की प्रधानता है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी यही अनुमान लगाया है कि विनयपत्रिका गीतावली का ही परिवर्तित संस्करण है, जिसका समय स० १६६६ के कुछ बाद भी हो सकता है। अब पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का मत भी देखिए। वे लिखते हैं—

“गोस्वामी जी स० १६४४ के लगभग ब्रज गए होगे और वहाँ से लौटते ही ‘विनयपत्रिका’ के पद रचने आरम्भ कर दिए होगे और इस प्रकार १६६५ तक रचते रहे होंगे।”

इस मत के सम्बन्ध में हम भी वही कह सकते हैं, जो डा० माताप्रसाद गुप्त ने कहा है। वे लिखते हैं—

“त्रिपाठी जी ने बदायिन् केवल ‘विनयपत्रिका’ पाठ को लेकर विचार किया है, ‘पदावली रामायण’ पाठ पर यदि उन्होंने ध्यान दिया होता तो इस प्रकार की बल्बनाएँ वे न करते।”

अर्थात् ‘विनयपत्रिका’ का रचना-तिथि-सम्बन्धी त्रिपाठी जी का मत बल्बना-मात्र है। अब डा० श्यामसुन्दरदास के मत पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। उन्होंने लिखा है—

“इसमें केवल १७६ पद हैं, जबकि और प्रतियों में २८० पद तक मिलते हैं। यह कहना कठिन होगा कि यह शेष १०४ पदों में से कितने वास्तव में तुलसीदास जी ने बनाए हैं और कितने अन्य लोगों ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन १०४ पदों में से कितने पद तुलसी-दास जी के स्वयं बनाए हुए हैं, वे सब सन् १६६६ और सन् १६८० के बीच में बने होंगे।”

उपयुक्त मत ‘विनयपत्रिका’ की एक प्राचीन प्रति को आधार बनाकर व्यक्त हुआ है। उस प्रति में रचना-तिथि स० १६६६ दी हुई है।

डा० रामकृष्णर वर्मा ने भी डा० श्यामसुन्दरदास के उपर्युक्त मत काई समर्थन किया है। वे लिखते हैं—

“यदि यह प्रति प्रामाणिक है तो संवत् १६६६ ही ‘विनयपत्रिका’ (विनयावली) का रचना-काल निश्चित होता है।”

किन्तु जिस प्रति को आधार बनाकर डा० श्यामसुन्दरदाम एवं डा० वन ने अपने मत व्यक्त किये हैं, यह डा० माताप्रसाद गुप्त के मत से सम्भव मूल प्रति नहीं, अपितु ‘प्रतिलिपि’ मात्र ही हो। अतः उस पर तिसी तिथि के प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

अब घोड़ा घेणीमाधवदास के उस अनुमान पर भी विचार कर लें, जो राम की मिथिला-यात्रा के समय पर आधारित है। वे लिखते हैं—

विदित राम विनयावली,
मुनि तब निमित कीन्ह।
मुनि तेहि साखी युत प्रभू,
मुनिहि अभय कर दीन्ह।
मिथिलापुर-हेतु पयान किए,
सुकृतो जन को सुख सांगि दिए।

इन पक्तियों में ‘मुनि तब निमित कीन्ह’ के प्रासंगिक अर्थ के आधार पर ही डा० श्यामसुन्दरदास ने यह भी माना है कि ‘विनयपत्रिका’ स० १६६६ और १६६६ वि० के मध्य लिखी गई होगी।

इन सब मतों से ‘विनयपत्रिका’ की रचना-तिथि का विशुद्ध प्रामाणिक निर्णय नहीं होता। तुलसी ने भी ऐसा कोई संकेत नहीं दिया, यह पहले ही कहा जा चुका है। पर यह तो निश्चित है कि तुलसी उस समय वृद्ध हो चुके थे। वे ‘विनयपत्रिका’ में बार-बार अपने जीवन-काल को कोसते हैं तथा जगत् के प्रति भी उनकी निष्ठा समाप्त हो चुकी है। भले ही यह सब उनकी बढ़ती हुई विराम-वृत्ति का परिणाम हो, तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह विराम-वृत्ति भी वृद्धावस्था में ही परिपक्व होती है। तुलसी ने लिखा है—

मेरे मुँह फेरे मोसे कायर कुपूत कूर,
सटे सट पटनि को कौन परिगहेगो।

ये पत्तिकों कवि की वृद्धावस्था की सूचना देनी है। उन्होंने आगे लिखा है—

देखन हो आई बिग्याई-
जो तैं सपनेहुँ नाहि बुसाई ।
सो प्रबट तनु जर जर जराबस,
प्यावि सुख सताबई ।
मिर कव इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहस,
सखन काहु न भावई ।

तथा

खेलन खात तरिकपन गी खलि,
जोखन जुबतिन सियो जीति ।
रोग बियोग-सोग समसंजुल
जड़ि वय बुधाहि अतीति ॥

इन पत्तिकों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' की रचना अपनी वृद्धावस्था में की। यदि उनका मृत्यु सन् १६८० मही है तो यह मान लेना भी अनुचित न होगा कि 'विनयपत्रिका' की रचना सन् १६६६ और १६८० वि० के मध्य हुई होगी।

ग्रन्थ ४—“विनयपत्रिका में तुलसी-युग की विभिन्न परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।” उपर्युक्त उद्धरण देकर इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए।

उत्तर—विनयपत्रिका एक भक्ति-प्रधान काव्य है। उसमें कवि ने विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति करते हुए भगवान् राम की शरण ली है और वही उसकी कान्तर आत्मा को जागतिक दुखों से मुक्ति का दर्शन हुआ है। अतः उसमें वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है, तथापि कवि का जीवन जिन परिस्थितियों में व्यतीत हुआ है, उनका भी पर्याप्त चित्रण अप्रत्यक्षतः उसमें स्थान पा गया है।

वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था की शिथिलता की ओर संकेत करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल विषोयो बीच ।
 धरम धरन आस्रमनि के, पैयत पोषिही पुरान ।
 करतब बिनु बेस देखिए, ज्यो सरीर बिनु प्राण ।

तत्कालीन समाज की पतनावस्था का कई स्थानों पर तुलसीदास जी ने अत्यन्त विस्तार से चित्रण किया है। वे लोगो की पापाचार प्रवृत्ति एवं नास्तिकता को देख-देखकर मन-ही-मन दुखी होते थे। एक स्थान पर 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने लिखा है—

नीति प्रतोति-प्रोति परमिति रति, हेतुवाद हठि हेरि हई है ।
 आस्रम-धरन-धरम बिरहित जग, लोक-बेद मरजाद गई है ॥
 प्रजा पतित पापण्ड पाप-रत, अपने-अपने रंग रई है ।
 साति, सत्य, सुभरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है ॥
 सोदत साधु साधुता सोचति, लख मिलसत हलसति ललई है ।
 परमारथ स्वारथ साधन भए, अभल सकल गर्हि सिद्धि सई है ॥
 कामधेनु-धरती कलि-गोकर, बिसस बिकल जामति न बई है ।
 कलि करनी बरनिए कहा लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है ॥

इस पद में तुलसी ने विस्तार से यह बतसाया है कि पूर्ण समाज कुरीतियों से ग्रस्त है, मनुष्यों में छल-दम्भ की वृद्धि हो रही है, सर्वत्र नास्तिकता फैली हुई है और नैतिक सिद्धांत, धर्मशास्त्र, श्रद्धा, भक्ति आदि समाज में उठते जा रहे हैं, वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था समाप्त हो गई है, लोक और वेद की मर्यादाएँ भंग हो रही हैं तथा प्रजा पाप-रत है एवं अनेक प्रकार के दुराचार समाज में आश्रय पा रहे हैं। इस एक पद में ही हमें तुलसी-गुण की विभिन्न परिस्थितियों की एक स्पष्ट झलक मिल जाती है।

उस समय समाज में अनेक अन्धविश्वास पनप रहे थे। लोगों की धर्म साधना के वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं था। तीर्थयात्रा आदि में लोगों की अधिक रूचि थी। योग-साधना का भी पर्याप्त प्रचार था। काम, क्रोध, मद आदि से ग्रस्त जन-समाज ज्ञान और वैराग्य से हाथ धो बैठा था। मुनियों के अनेक मत एवं पुराण-प्रतिपादित नाना पंथ लोगो में संघर्ष पैदा कर रहे थे। तुलसी लिखते हैं—

तप, तीरथ, उपवास, दान, मल जेहि जो रुचि करी सो ।
 पापेहि पं जानिबों करम-फल, भरि-भरि बेद परोसो ॥

धायम बिधि जप-जोग करत नर सरत न काज खरो सो ।
 सुख सपनेहु न जोग सिधि-साधन, रोग-बियोग घरौ सो ॥
 काम ज्योष, भद्र, सोम, मोह भित्ति, ध्यान बियोग घरौ सो ।
 बहुमत मुनि बहु पंच पुराननि, जहाँ तहाँ भ्रमरो सो ॥

तुलसी को समाज में साधुओं के प्रति बढ़ती हुई अप्रतिष्ठा का भी बहुत अनुभव हुआ था, तभी तो उन्होंने लिखा है—

लोग कहैं धोख, सो न सोच न संजोख मेरे,
 क्याह न बरेखो, जाति-पाति न चहत हौ ।
 तुलसी अकाल बात राम हौ के रोमैं लोभैं,
 प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौ ।

इन पंक्तियों से तत्कालीन समाज में फैली हुई जाति-पाति और छुआछूत की सखीर्ण भावनाओं की भी एक झलक मिलती है । मुसलमानों के विनाश का युग-व्यापी प्रभाव भी तुलसी ने सामाजिक जीवन पर वैयक्तिक अनुभूति का रूप देकर बड़ी-बड़ी ध्वनि बिखा है; यथा—

सरिकाईं बीती अचेत बित
 बचलत। बीगुने जाय ।
 जीवन क्षुर चुबती कुपथ्य करि
 भयो विरोस भरि मदन जाय ।
 मध्य अयस धन हेतु मेषाईं
 कृषी अनिज नाम उपाय ।

दुली-परिहो की समाज में बिगनी दुर्दशा तथा उल्लास थी, इसकी स्पष्ट भाँवी इन पंक्तियों में मिलती है—

हार हार होमना कही,
 काढ़ि रद परि दाह ।
 हैं दयासु हुनो दस दिता,
 दुख - दोल - बलन - दम
 बिगो न समाधन बाह ।
 तनु लखी कुटिल बोट बयो,
 लखी भागु दिनाह ।

बिगु उस युग में लोगों की भी बची न थी, नयी तो मुसली की खीरिन रहने के लिए उनसे सहानुभूति मिल गई थी—

बुझित देनि संतन कह्यो

सोचें जनि मन माहूँ ।

समाज में स्वार्थ की मात्रा कितनी बढ़ चुकी थी, इसका एक संकेत तुलसी की निम्नांकित पंक्तियों से मिलता है—

अगुन-असापक-आससी जानि अपम अनेरो ।

स्वार्थ के सापिण्ड सग्यो तिवरा को तो ।

टटोक, भीषट उसटि न हेरो ।

×

×

×

नाम की ओट पेट भरत हौं वै कहावत खेरो ।

राजनैतिक परिस्थितियों की ओर तो तुलसी ने कई स्थानों पर संकेत किया है; यथा—

राज समाज कोटि कसपत कलुष कुधास भई है ।

भीति प्रतीति प्रीति परिमित रति हेतुबाध हठि हेरि हुई है ॥

राजी का शरण न मिलने पर ही तुलसी भगवान की शरण में गए थे । इससे स्पष्ट है कि तुलसी के युग में असहायों और दीन-दरिद्रों के लिए राम के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं था । तुलसी को राम के समान दूसरा दयानु ससार में नहीं मिला था—

राम राखिए सरन, राखि आये सब दिन ।

बिबित त्रिलोक तिहूँ काल न दयालु बूजो ॥

संस्कालीन वैयक्तिक जीवन की अस्थिरता एवं मानसिक वैषम्य की ओर संकेत करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

कबहुँ जोग रत, भोग निरत सठ

हठ त्रियोग यस होई ।

कबहुँ मोह यस मोह करत बहु × ×

कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर

कबहुँ भूप अभिमानी ।

कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत,

कबहुँ धर्म रत भ्यानी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास जी ने विनयपत्रिका में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के साथ युग-परिस्थितियों की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की

है। उनकी भाषा में विभिन्न रूपों में समाज के विभिन्न विषय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कही-न-कही स्थान पा ही गये हैं। सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक—सभी परिस्थितियों की ओर उन्होंने अवसर मिलने पर सकेत किया है। अतः यह बचन गलत ही है कि “विनयपत्रिका में तुमसी-पुग की विभिन्न परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।”

प्रश्न ५—विनयपत्रिका के प्रमुक्त वर्ण्य-विषय क्या हैं? संक्षेप में प्रत्येक पर विचार कीजिए।

उत्तर—‘विनयपत्रिका’ अपने नाम के अनुसार, कवि की विनयोक्तियों का कोष है, जिसको उसने अपने आराध्य (राम) के चरणों में समर्पित किया है। अतः स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि उनका वर्ण्य-विषय अपने आराध्य राम के प्रति ‘विनय’ मात्र है। किंतु यदि सूक्ष्म दृष्टि से प्रत्येक पद के विषय की छान-बीन की जाय तो यह तथ्य प्राप्त कर लेना भी कठिन नहीं है कि उसमें कवि ने अपनी विनय-भावना को विभिन्न गौण विषयों के माध्यम से व्यक्त किया है। सामान्यतः हम विनयपत्रिका के वर्ण्य-विषयों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

- (१) हिन्दू-धर्म में माग्य विभिन्न देवी-देवताओं का परिचय और उनके प्रति श्रद्धाभिष्यक्ति।
- (२) धार्मिक स्थानों का परिचय।
- (३) सासारिक जीवन की निस्तारता का वर्णन।
- (४) नश्वर जगत् में जन्म लेने के कारण जीवार्थमा की लग जाने वाले पापी के प्रति श्वाभि-व्यजना।
- (५) आत्म-रूप की समझने के लिए उसकी अभिव्यजना।
- (६) आत्म-सुधार के लिये मन के प्रति उद्बोधन।
- (७) राम की महिमा का वर्णन।
- (८) राम की शरण और उसमें प्राप्त आनन्दानुभव।

तुलसी ने अपने विचारों और भावों को इन विषयों के रूप में समस्त विनयपत्रिका में यत्र-तत्र बिखेर दिया है। अतः शोज करके एकत्र करने पर इन सभी विषयों की सामग्री हमें उसमें प्राप्त हो सकती है। यहाँ हम प्रत्येक पर संक्षेप में विचार करेंगे।

१—तुलसी ने प्रारम्भ में ही हिन्दू-धर्म में मान्य देवी-देवताओं का परिचय दे दिया है और उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। प्रथम पद में हमें गणेश जी का परिचय मिलता है और उनके प्रति कवि की श्रद्धा का दर्शन होता है; यथा—

गाइए गनपति जगबन्धन ।
 संकर - सुयन भयानी - मन्दन ।
 सिद्धि-सदन, गज-बदन, विनायक ।
 कृपा-सिन्धु, सुन्दर सब सायक ।
 मोक्षक-प्रिय पुत्र-भगवत्-दाता ।
 बिद्या-धारिणि, बुद्धि-बिधाता ।
 भोग्य तुलसीदास कर जोरे ।
 बसोहि रामसिय मानस मोरे ॥

इस गणेश-स्तुति में स्पष्टतः तीन बातें दृष्टिगोचर होती हैं। पहले कवि ने गणेश जी का परिचय दिया है, फिर उनकी प्रशंसा की है। तत्पश्चात् उनसे राम-सीता की भक्ति-याचना की है। अतः परिचय, प्रशंसा एवं राम-भक्ति-याचना का सुन्दर क्रम हमें तुलसी की राम-भक्ति सम्बद्ध अनन्यता के क्षेत्र में ला खड़ा करता है। उन्होंने इसी क्रम से हिन्दू धर्म मान्य कई प्रमुख देवी-देवताओं की स्तुति की है। गणेश जी की बग्वना पश्चात् क्रमशः सूर्य, शिव, दुर्गा, यमा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भर शत्रुघ्न, सीता और फिर भगवान् के विभिन्न रूपों में राम की स्तुति मिल है। तुलसी ने यही तन्मयता से इन सबका परिचय दिया है, प्रशंसा की और फिर सबसे राम-भक्ति की याचना की है। शिवजी की स्तुति में भी तुलसी के देव-भावना सम्बन्धी उस क्रम को देखिए—

जो जांचिए संभु तजि आन ।

दीनदयालु भक्त-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान् ॥

कालकूट-ज्वर-जरत सुरासुर, निज पन लागि कोन्ह विष-पान ।

दारुन दनुज जगत-बुल्लदायक, मारेउ त्रिपुर एकही बान ॥

जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत सन्त, स्तुति, सकल पुरान ।

सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिध सबोहि समान ॥

सेवत सुलभ उदार कल्पतद, पारवती-पति परम सुजान ।

देह काम-रिपु राम चरन-रति, तुलसीदास कहें कृपानिधान ॥

२—विनयपत्रिका का द्वितीय अध्याय—विषय है—धार्मिक स्थानों का परिचय ।

काशी और चित्रकूट—दो स्थानों को प्रधानतः कवि ने अपने वर्णन का विषय बनाया है । प्रारम्भ में देवी-देवताओं के साथ दोनों की स्तुति की है; यथा—
काशी का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं—

सेव्य सहित सनेह देहभरि,

रामधेनु कलि

सामनि सोक-पंताप-पा

सकल

मरजाद छहें ओर

सेवत

सौरभ सब सुभ भंग

सिर्वालित अमित

अतरअवन अवन अल, अन फल,

वचन

वेद-विस्वासी ।

गलबंदन बदन विभाति जन,

लूभ

सतित सरिता-सी ।

दण्डपानि भेरव विधान,

मलरोचि ससगन भयदा-सी ।

सोलहिनेम त्रिसोवन सोवन,

वरमघंट

घटा-सी ।

मनिहनिषा बदन-सनि-मुग्धर,

गुरतरि सुख सुखमा-सी ॥

आगे उन्होंने काशी की महिमा का विस्तार में बखान दिया है । चित्रकूट की भी उन्होंने इसी प्रकार विस्तार में स्तुति की है । वे निरत हैं—

सब सोच विमोचन चित्रकूट ।

कनिहरन, करन बखान कूट ॥

सुखि सबनि सुखनि आसबास ।

बानन बिबिध, बारी विनाम ॥

मध्याह्निक-भानिनि सदा शीघ्र ।
 बार बार विषम नर नारि शीघ्र ॥
 साया गुग्गुण, भूरह गुपान ।
 निरभर मधुकर, मृदु मलय धान ॥
 मुर, पिच, मधुकर, मुनिघर विहार ।
 सायन प्रभून, कल चादि चाह ॥
 भव-घोर बाम-हर मुलक छह ।
 धप्यो पिर प्रभाव जानकी-माह ॥

और उसके पदपागु तुलसी ने चित्रकूट के भक्ति-गरक महर्ष को स्पष्ट दिया है तथा चित्रकूट-वासी को रामभक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक बतलाया है ।

आगे समस्त विनयपत्रिका में स्फुट रूप में काशी और चित्रकूट का नाम यत्र-तत्र मिल जाता है । दोनों ही स्थानों को तुलसीदास जी ने देवताओं के सम्मान ही महर्ष प्रदान किया है । भगवान् राम की भक्ति के लिए इन दोनों स्थानों से स्वाभाविक अनुराग आवश्यक बतलाया है ।

३—विनयपत्रिका में तुलसी ने सांसारिक जीवन की व्यर्थता का अनेक पदों में उल्लेख किया है । उन्होंने जग को कहीं रात्रि का रूपक दिया है और कहीं शरीर तथा घर की समता को घन-मध्य क्षण-भर चमक कर समाप्त हो जाने वाली बिजली माना है । ये कहते हैं—

जागु-जागु जीव जड़ । सोहे जग जामिनी ।

देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-बापिनी ।

ये सत्तार को अनेक प्रकार के दुःखों का घर बतलाते हैं—

सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि सुदत भय लागे ।

कोटिहुं नाव न पार पाव सो, अब लगि आपुन जागे ।

अनविचार रमनीय सदा सत्तार भयंकर भारी ।

× × ×

तुलसीदास सब विधि प्रपंच जग जदपि भूठ छुति गाये ।

जग में क प्रकार के मत्तो में स्वाभाविक सम्बन्ध जीव पूर्णतः व्यर्थ प्रतीत होता है । तुलसी

मोह जनित भक्त साग विविध विधि,
 कोटिहु जनन म आई ।
 जनम जनम अभ्यास निरत धित,
 अधिक अधिक तपटाई ।
 मयन मलिन परनारि निरखि,
 मन मलिन विषय संग लागे ।
 हृदय मलिन वासना-मान-मह,
 जीव सहज सुख त्यागे ।

वे अपने जन्म की व्यर्थता पर इस प्रकार पश्चात्ताप करते हैं—

बहु हूँ न आई गयो जनम जाय ।

अति कुरत्तम तनु पाइ कपट तजे न राम मन-वचन-काय ।

४—जीवन की व्यर्थता को समझ लेने के बाद तुलसी को अपने जागतिक पापों के प्रति हादिक ग्लानि हो जाती है । वे स्वयं को सब प्रकार तिरहे समझने लगते हैं । आरम-दोषों के प्रति जैसी ग्लानि तुलसी के पदों में मिलती है, वैसी बहुत कम कवियों के काव्य में दृष्टिगोचर होती है । वे अपने को वासना-ग्रस्त पाकर बह उठते हैं—

काम-लोसुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ।

× × ×

किए सहित सनेह अघ जे, हृदय राखे खोरि ।

× × ×

सोम नगहि नचाव कवि ज्यों, गरे आसा खोरि ।

× × ×

एतिहुँ घर तुम्हरो बहावत, लाज भँवई धोरि ।

वे अपने को सबसे अधिक 'लोटा' समझ कर कहते हैं—

राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटी ।

राम सो सरो है कौन, मोसो कौन लोटी ॥

सोक बहै राम को गुलाम हों बहावों ।

हतो बड़ो अपराध भी न मिन बावों ॥

उनकी आरम-ग्लानि यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे यह कहने को तैयार हो जाते हैं—

कोजे मोकी जम जातनामई ।

राम ! सुगते सुचि सुदृढ साहियाहि में सठ पीठि बई ॥

गरभयास दस मास पासि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों ।

जइहि-बिबेक, सुसीत खसहि, अपरगंधिहि आदर दीन्हों ॥

कपट करों अन्तरजामिहुँ सों, अघ व्यापकहि दुरावों ।

ऐसेहुँ कृमति कृसेषक पर रघुपति न कियो मन बावों ॥

उदर भरों फिकर कहाइ बेच्यो विषयन हाथ हियो है ।

मोसे बंचक को कृपासु छल छाड़ि कै छोह कियो है ॥

५—अपने पाप-पूर्ण जीवन के प्रति ग्लानि उत्पन्न होने पर तुलसीदास जी आत्मामिश्रजना में लीन होते हैं और इस प्रकार भगवान् के निकट 'स्व' की पूर्णतः अभिव्यक्ति कर देना चाहते हैं । कभी तो वे कहते हैं—

द्वार-द्वार दीनता कही काड़ि रव परि पाहू ।

× × ×

तनु लग्यो कुटिल कीट ज्यों, लग्यो मातु-पिताहू ।

× × ×

बुझित देखि संतन कह्यो, सोखे जनि मन माहूँ ।

और कभी कहते हैं—

कहा न कियो कहाँ न गयो, सीस काहे न जायो ?

राम राखरे बिन भये जन जनमि जनमि,

जप बुझ दसहूँ दिसि पायो ।

आस बिगत सास दास हूँ मोख प्रभुनि जनायो ।

हुँ हाँ करि दीनता कही द्वार-द्वार,

बार-बार, परी न छार मुह बायो ।

असन बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि घायो ;

महिमा मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खसनि—

आगे, खिनु खिनु पेट खलायो ;

नाथ ! हाथ कछु नाहि लग्यो, सालब सलचायो ।

आत्म-रूप पर विचार करते हुए वे आगे लिखते हैं—

सरिकाई भीतो अचेत चित,

खलसता चीगुने धाय ।

जीवन-धुर जुबती कृपण्य करि,
 भयो त्रिशूल भरि भदन बाय ।
 मध्य बयस धन-हेतु गेवाई,
 कृषो खनिज नाना उपाय ।
 राम बिमुख मुख सह्यो न सपनेहुं,
 निसि वासर तयो तिहुं ताय ।
 सेये महि सोतापति सेवक,
 सायु सुमति भलि भगति भाय ।

६—तुलसीदास जी यह समझ लेते हैं कि जीव जगत् में बाहर विभिन्न वासनाओं में फँस जाता है और जन्म-जन्मान्तर तब उन्हीं में पड़ा भटकना रहता है, ईश्वर को नहीं पहचान पाता । अतः वे बार-बार अपने मन को समझाते हैं और आत्म-मुपार करके भगवान् की भक्ति में लग जाना चाहते हैं । उन्होंने अनेक पदों में अपने मन को इसी प्रकार उद्बोधन दिया है; यथा—

राम-राम रहू, राम-राम रहू, राम-राम जपु जीहा ।
 राम नाम-नम-मैह मेह को मन । हठि होहि बपीहा ॥

× × ×

एक भग मन भगमु गवन कर बिलकु न दिन-दिन छाँहैं ।
 तुलसी हित अपनी अपनी हिति निदरधि नेम निबाहैं ॥

उन्होंने अपने मन को शरीर-धारण का चल बनसाते हुए समझाया है कि—

मन हतनोई वा तनु को वरम जनु ।
 सब अंग सुभग बिनु बाधब दधि ।
 तजि सुभाष अहलोकि एव जनु ।

उन्होंने राम-नाम के 'जाप' पर बहुत बल दिया है । वे कहते—

राम जपु राम जपु राम जपु जावरे ।

× × ×

राम नाम जपु जिय नटा लानुराय रे ।

× × ×

राम राम राम जीह जोतीं तू न जापि है ।
तो सौ तू कहैं ही जाय तिहूँ ताप तापि है ।

× × ×
सुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे बोन की ।
राम नाम ही की गति जैसे जल मीन की ।

× × ×
सुमिरि सनेह सो तू नाम राम राम की ।
संयल नितंबल को, राखा असहाय को ।

सुलसी ने मन को चेतावनी दी है कि मनुष्य का दुर्लभ शरीर बार-बार नहीं मिलता, इसलिए कर्म, वचन और हृदय से हरि का भजन करके उसे सफल बनाना चाहिए—

मनु ! पछितै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु
करम वचन अरु ही ते
× × ×
सुत बनितानि जानि स्वारथ रत,
न कर नेह सबही ते ।
अगतहु तोहि तजैने पामर !
तू न तजे अवही ते ।

फिर कहते हैं—

मन मेरे, मानहि तिल मेरी ।
जो निजु भगति चाहै हरि केरी ।
× × ×
सुनु सठ काल प्रसित यह देही ।
जनि तेहि सागि विदूषहि केही ।

७—मन को समझाने के बाद सुलसी ने विनयपत्रिका में राम की महिमा को अपना वर्ण-विषय बनाया । उन्होंने विस्तार से राम के गुणों का वर्णन किया है तथा राम की भक्तों के उद्धार की दयादर्शनीयता का बखान किया है । यह विषय विनयपत्रिका के सबसे अधिक पदों में स्थान पाता है । ये कभी

तो कहते हैं कि राम का नाम कलियुग में समस्त प्रकार के तापों से जीव का मुक्त करने वाला है—

कलि नाम कामतस राम को ।

हसनिहार दारिद्र दुःखाल दुःख, शोष घोर घनघाम को ।

कमी कहने हैं कि—

कलि न विराग जोग जाग तब ह्याग रे,

राम सुमिरन सब बिधि ही को राज रे ।

× × ×

राम नाम के जये जाय जिय को जरनि ।

कलि ताल अपार उपाय से अपाय भए,

जैसे तम नासिबे को बिघ्न के तरनि ।

उन्होंने राम की स्तुति करते हुए उनकी महिमा का अत्यन्त गौरवपूर्ण वर्णन किया है । एक उदाहरण देखिए—

सगतसंताप-हर बिरह-विराम-हर

राम कामारि अभिराम-कारी ।

शुद्ध बोधायतन सच्चिदानन्दधन

सज्जनानन्द धर्मन सरारी ।

शील-समता-भवन, विचमता-मनि-शयन,

राम रमारमन, राखनारी ।

× × ×

मित्य निमुंस्त, सपुन्य गुण, निर्गुणानन्द

भागवन्त ग्यामक निर्दना ।

बिरह-बोधन भरन, बिरह-बारन-बरन

हारन लुनसीदास प्राप्त हुना ।

८—राम की महिमा की समस्त लेखों के पश्चात् लुनसी दूकंभः उनकी शरण में लेने हैं और उसी में जानबूझकर बहने हैं । अब को राम की शरण में छोड़कर लुनसी ने अनेक प्रकार से अपने बन्ध-दुःख का परिचय दिया है । उनकी विनयप्रतिभा की समस्त शक्त एक ही-विनयप्रतीति उनके हृदय प्रकार के पदों में बाँटि जागी है । कुछ उदाहरण यही उद्धृत करने हैं । राम की शरण में पहुँचकर वे कहते हैं—

भौद बहै ठीह रघुसत-भनि । मेरे ।

पतित पावन प्रमत्त-पास असरन सरन,
बाँकुरे बिरह बिरहंत केहि केरे ।

उन्हें राम के अतिरिक्त अन्य वही कारण नहीं मिल सकती—

बीनवायु । दूरि किये बीन कोन बूतारी सरन,
आपको भते हैं सब, आपने को कोऊ बहूँ
सब को भलो है राम । राखरो धरन ।

×

×

×

सीस-तिग्गु । तोसों ऊँचो मोचियौ बहत सोभा
तोसों तुहो तुलसी तो आरति हरन ।

वे दिन-रात राम की कृपा की प्रतीक्षा करते रहते हैं—

नाथ । कृपा हो की पंच कितवत बीन हौं दिन राति,
होइ धौं केहि कारा बीनबयास, जानि न आति ।

वे यह कामना करते हैं कि सत का स्वभाव प्राप्त कर निरन्तर पर-हित में
सीन रहें और किसी से कोई आशा न करें—

कयहुँक हौं यहि रहनि रहोंगो ।

धीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त सुभाव सहोंगो ॥

जपालाभ सगतोव सदा, काहूँ सौं कछु न चहोंगो ।

परहित-निरस निरन्तर मन कम बधन नेम निबहोंगो ॥

साराण यह है कि विनयपत्रिका के वर्ण्य-विषयों में एक क्रम मिलता है,
जिसका राम-भक्ति की दिशा में उत्तरोत्तर विकास हुआ है । समस्त वर्णन में
विनय की उदात्त भावना व्याप्त है । वर्ण्य-विषयों में विविधता होते हुए भी
विचार की एकता पाई जाती है । तुलसी ने राम-भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए
सभी वर्ण्य-विषयों का सुन्दर ढंग से आयोजन किया है और उसी के अनुसार
उनकी कल्पना और भावना रमी है ।

प्रश्न ६—संक्षेप में विनयपत्रिका की विनय-मूर्ति पर सोदाहरण विचार
कीजिए ।

उत्तर—‘विनयपत्रिका’ महाकवि तुलसीदास की काव्य-कला की अनुपम
सृष्टि है । इस काव्य में कवि का हृदय अत्यन्त व्यापक रूप में अभिव्यक्त

हूया है। उममें हमें दैन्य-भाव का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है। कवि कतिपय की यातनाओं में पीड़ित होकर अपने उपास्य भगवान् राम की शरण में जाना चाहता है। उसके जीवन में गहरी वेदना भरी हुई है। यह वेदना केवल उसके जीवन की ही वेदना नहीं है, अपितु उसमें मानव-मान की ध्वधा का अन्त मिश्रु सह्रा रहा है। तुलसी इस वेदना से मुक्ति पाने के लिए राजा राम के दरबार में एक प्रार्थना-पत्र—विनयपत्रिका भेजते हैं। राज-दरबार के सभी नियमों का निर्वाह करते हुए वे अपनी ध्वधा राम के कानों तक पहुँचाना चाहते हैं, अतः वे पूर्णतः उस पद्धति का अनुसरण करते हैं, जिसका एक राजा के दरबार में प्रार्थना-पत्र पहुँचाते समय वासन करना अनिवार्य होता है। यही कारण है कि हमें उनकी विनयपत्रिका में प्रारम्भ से अन्त तक एक क्रम मिलता है। यही क्रम तुलसी की विनय-पद्धति को जन्म देता है। यहाँ हम संक्षेप में विनयपत्रिका की इस विनय-पद्धति पर विचार करेंगे।

किसी भी राजा के दरबार में अनेक दरबारी होते हैं। जिसकी पहुँच इन दरबारियों तक नहीं होती, राजा तक उस व्यक्ति की पहुँच सरलता से नहीं हो सकती। अतः राजा के पास पहुँचने से पूर्व इन दरबारियों को प्रसन्न कर लेना आवश्यक है। राजा के पास सीधे पहुँच कर अपनी प्रार्थना सुना डालने पर यह सम्भव हो सकता है कि दरबारी कार्य-सिद्धि न होने दें—राजा को कुछ-बा-कुछ सुझा दें। यदि वे प्रार्थी पर प्रसन्न हैं, तब ऐसी शका के लिए अवकाश नहीं रह जाता; साथ ही उनको प्रसन्न करके राजा से उनके द्वारा अपनी 'सिफारिश' भी कराई जा सकती है, किन्तु दरबारियों को प्रसन्न कर लेने मात्र से प्रार्थना-पत्र स्वीकार नहीं हो जाता। राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए कतिपय अन्य आवश्यक बातें और होती हैं, जिनकी पूर्ति प्रार्थी को करना पड़ती है। कहने का आशय यह है कि किसी भी राजा तक अपनी विनय पहुँचाने के लिए एक पद्धति-विशेष का अनुसरण करना पड़ता है, अन्यथा विनयपत्रिका (प्रार्थना-पत्र) के स्वीकृत होने की सम्भावना नहीं रहती। तुलसी ने भी राजा के दरबार में लौकिक यातनाओं से मुक्ति पाने के लिए जो विनय-पत्रिका भेजी है, उसमें उस पद्धति का बड़ी सावधानी से अनुसरण किया है।

सबसे पहले तुलसी ने राजा श्रीराम के दरबारी देवताओं की प्रशंसा स्तुति की है, किन्तु इस स्तुति में उन्होंने उनकी भक्ति नहीं की, भक्ति तो वे राजा

राम की ही चर्चा है, जैसा कि लोकेश देवरा के लिए ही यह स्तुति।
मन्त्रों में भी चर्चा है विवेक विद्या है। यहाँ, प्रथम श्लोक-स्तुति के ही
बहने हैं—

सादये सारथ्यं सारथ्यम् ।

मकर मुरग मन्त्री-मन्त्र ॥

×

×

×

मोक्ष मुक्तिराम कर मोरे ।

बलति राम-निष्ठ मानव मोरे ॥

राम-जीवा की यह मन्त्र क्यों मानी गई है ? राम को प्रणम करने के लिए
आमना उनकी विनम्रता किम प्रकार स्वीकृत होगी ? लोकेश की कल्पना
उन्होंने सबसे पहले इंगित आचार्य मन्त्री, योंकि वे 'मिष्ट-मन्त्र' का
राम के देव-दरबार के द्वारपाल हैं। बिना उनकी आज्ञा के तुमनी को द्वार-
प्रवेशाज्ञा कैसे मिल सकती है ?

लोक जी की कल्पना के पश्चात् तुमनी ने कल्पितः सूर्य, शिव, देवी (कति)
गंगा, यमुना, काशी, विनयक, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की स्तुति
विस्तार से की है। इन सबकी प्रणम करने में भी तुमनी का राम को प्रणम
करने का उद्देश्य ही निहित है, योंकि इन सबका अग्य देवताओं की सेवा
राम से अधिक निकट का सम्बन्ध है। सूर्य का राजा राम के अवतार के रूप
से सम्बन्ध है, अतः लोक जी के पश्चात् उनकी स्तुति आवश्यक हुई। फिर
शिव और शक्ति का क्रम है, योंकि शिव राम के भक्त और शक्ति राम की
माया की अनिवार्य है। तुलसी कहते हैं—

बुराह बोध-बुल बलति, कद देखि दाया ।

विस्व-मुखाति, अमरानुबूताति,

कर सुलधारिनी महामुलमाया ।

×

×

×

देहि मा, भोहि पन प्रेम यह । नेम निज,

राम धनस्याम सुलसी पपीहा ।

विष्णु-पदकज मकरव दय अम्बुवर बहति,

कुल बहति अधवृत्त विद्याविनी ।

×

×

×

देहि रघुवीर-पद-प्रोति निरमर मातु,

दास तुलसा प्रासहरनि भवभामिनी ।

राम के चरणों से निरसृत गंगा को प्रसन्न करके तुलसी सरसता से उन चरणों तक पहुँच सकते हैं, अतः गंगा की स्तुति में उन्हें आवश्यक प्रतीत हुई। बहने का आशय यह कि इसी प्रकार उन्होंने पूर्वोक्त सभी देवताओं की स्तुति करके राम की भक्ति की याचना की है। राम के दरबार में प्रवेश करके सभी प्रमुख देवताओं को प्रसन्न करने का मार्ग उन्होंने सरसता से प्राप्त कर लिया है।

विष्णु दरबारियों को प्रसन्न कर लेने से ही काम नहीं चल जाता। विनय-पत्रिका पहुँचा देना मात्र तुलसी का उद्देश्य नहीं है, अविष्णु के अपनी विनय की स्वीकृति भी चाहते हैं, अतः वे उन सभी उपायों को पूर्ण कर लेना चाहते हैं, जो लक्ष्य अपेक्षित हैं। जब किसी सामान्य व्यक्ति से अपना काम बनाने के लिए उसकी मनोदशा का ध्यान रखना आवश्यक होता है, जिस समय वह बड़ा या बूढ़ हो उस समय सीधा काम भी बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है। तब राम तो एक बहुत बड़े राजा हैं—समस्त ब्रह्माक्षर जगत् की व्यवस्था का उन पर भार है। अतः उनकी मनोदशा का ध्यान रखे बिना सीधे उनके पास पहुँच कर अपनी विनय सुना देने से किस प्रकार काम बन सकता है? तुलसी इस समय से अपरिचित नहीं। अतः वे राम की मनोदशा के अनुकूल समय पाकर ही उनके सामने अपनी 'विनयपत्रिका' रखना चाहते हैं, किन्तु राम किस समय प्रसन्न मुद्रा में होंगे? इसका तुलसी को क्या किस प्रकार पता चले? अतः बड़ी चतुराई का परिचय देते हुए तुलसी एक क्षण सरस मार्ग खोज लेते हैं। वे अपनी विनय राम को स्वयं न सुनाकर माता सीता की जरूरत में पहुँचाते हैं। यदि वे आनन्द-मग्न दशा में पर जाने पर अपनी उसे अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर लेती हैं और वही भली प्रकार समझ भी सकती है कि यदि वो बीन-सी बात जिस समय सुनाने से बीन-ना काम बन सकता है। अतः तुलसी की माता सीता की इन मायिक कलाओं से बचना करने हैं—

बहुरूप अथ अक्षर वाद ।

देहिनी कृति दाहनी, बहु वरम-बदा चरम ॥

शीन तब भंगहीन दीन मनीन भयी भयाइ ।
 नाम ही भरै उबर एक प्रभु दासी-दास कहाइ ॥
 मुझि है 'सो है कोन', कहिबी नाम बता जनाइ ।
 सुनत राम हृषामु के मेरी बिगारिभौ बनि जाइ ॥
 जानकी जगजननि जम की किये बचन सहाइ ।
 तरै तुमसीदास भय तब-नाथ-गुनगन गाइ ॥

इन पंक्तियों में तुलसी ने अपनी विनय सुनाने की सम्पूर्ण कुमकता व्यक्त कर दी है। वे जानते हैं कि राम को माता सीता ही अधिक प्रभावित कर सकती हैं। वे ही जान सकती हैं कि राम की मुद्रा किस समय कैसी रहती है। अतः तुलसीदास सीता को 'माता' कहकर सबसे पहले उनका वात्सल्य प्राप्त करते हैं। फिर कहते हैं कि हे माता! कभी, जब अवसर मिल जाय, राम को मेरी भी याद दिला देना। कैंसी बाबूचानुरी के साथ तुलसी ने जानकी के द्वारा राम तक अपनी विनय पहुँचाने की चेष्टा की है। वे यह नहीं चाहते कि राम को मेरी कहानी एकदम सुना दी जाय। किसी भी बात को कहने तथा प्रभावशाली बनाने के लिए श्रोता के हृदय की तदनुकूल अवस्था होनी चाहिए। अतः तुलसी अपनी याद दिताने के पूर्व यह और चाहते हैं कि पहले राम के आगे किसी 'करण कथा' की चर्चा की जाय, जिससे राम का हृदय द्रवित होगा तो वे तुलसी की करुण कथा भी श्विपूर्वक सुन सकेंगे। यहीं तक नहीं, आगे की पंक्तियाँ भी तुलसी की विनय सुनाने की अद्भुत पद्धति का उत्कृष्ट रूप पाठक के सामने प्रस्तुत करती हैं। वे कहते हैं कि हे माता! करुण कथा चलाने के पश्चात् मेरी दीनता की कहानी राम को सुनाना और बताना कि वह ऐसा दीन-हीन व्यक्ति उनकी दासी का ही दास है—तुलसीदास।

॥ के दास में कितना विनय-भाव भर दिया है तुलसी ने! और फिर जिस से उन्होंने अपनी 'बिगरी' के 'बनने' की आशा की है, वह आशा उनकी ही अनुकूल है।

॥ स्तुति के पश्चात् तुलसी स्वयं को राम के निकट पहुँच गया सभी प्रमुख दरबारियों से लेकर रानी सीता तक को प्रसन्न कर फिर तुलसी को राम के निकट पहुँचने तथा विनय सुनाने ॥ है? इसीलिए तुलसी ने सीता की स्तुति के पश्चात् स्वयं को विस्तार से उनकी स्तुति की है। इस स्तुति में तुलसी ने

विस्तार से राम की महिमा का बखान किया है, जिसमें श्रीकृष्ण स्तुति, दशावतार कथा, विन्दु-माधव-प्रार्थना और शक्ति को भी स्थान मिल गया है। ऐसा करके तुलसी ने राम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। जिसको अपनी विनय सुनानो है उसके गौरव का स्मरण करना भी तो आवश्यक है, अन्यथा विनय का प्रभाव ही क्या होगा ? यह सब कर चुकने के पश्चात् तुलसी ने अत्यन्त उन्मुख हृदय से अपनी विनय-भावना को राजा राम के सम्मुख अभिव्यक्त कर दिया है। इस अभिव्यक्ति में उनका दैव्यभाव, आत्म-प्रकाशन तथा दुःख-निवेदन अत्यन्त स्पष्ट तथा मार्मिक भाषा में व्यक्त हुआ है। यही विनयपत्रिका का मूल भाग है, जो विनय की शास्त्रीयता एवं पटुता-पूर्ण एक विशेष पद्धति पर उस विनय को स्वीकार करने वाले अधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। तुलसी ने अपने जन्म-जन्मान्तर की दुःखद कहानी को लेकर अपनी कल्याणवस्था का राम की परिचय कराया है तथा अनेक प्रकार से आराम-ग्लानि में गलते हुए अपने मन को समझाया है।

विनय सुनाने वाले के लिए तुलसी की यह पद्धति भी अनुकरणीय है। आराम-दीप-दर्शन और आराम-ग्लानि की यह चर्चा विनय के अधिकारी के सम्मुख करना उद्धार के लिए की गई प्रार्थना से अधिक प्रभावीत्वादक हो सक्ता है—यह रहस्य तुलसी जैसे प्रतिभासम्पन्न अधिकारी भक्त की ही ज्ञात हो सकता था। देखिए, बार-बार यह कहने की अपेक्षा कि 'हे राम ! मेरा उद्धार करो' से अपनी दुर्दशा सुनाकर तथा आराम-ग्लानि की भयंकर प्यासा में जलते हुए स्थित राम के हृदय में उद्धार की इच्छा उत्पन्न कर देना चाहते हैं—

मोहि भूइ मन बहुत बिगोयो ।

पाके लिये मुनहु बरनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥

सीतल मयूर पिपूष सहज मुख, निबटहि रहत दूरि अनु सोयो ।

×

×

×

बंसे बेउं नार्थहि सोरि ?

राम-सोमुख अमल मन हरि, मगति परिहरि सोरि ॥

×

×

×

एतेहुं पर तुम्हारो बहावन, लाख बंबई सोरि ।

नित्यता पर शीभि रघुवर, तेहुं तुलसिहि सोरि ॥

यस्तुतः यह विनयपत्रिका जिसमें तुलसी ने अपने हृदय की समस्त व्यथा-पेदना घोल दी है, राम के आने ही सिध्दी गई है—चाहे राम उसको गुन रहे हों, चाहे न गुन रहे हों। सेसन-कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् पत्रिका-रूप में अपनी विनय-कथा को तुलसी श्रीराम के कर-कमलों में समर्पित कर देना चाहते हैं। किन्तु यह कार्य भी वे स्वयं नहीं करना चाहते। आतिर राम राजा हैं और प्रिलोक के राजा हैं। जब सामान्य अधिकारी के पास भी उसका एक 'पेशकार' होता है, जो प्रायियों से प्रार्थना-पत्र लेकर अधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत करता है, तब राजा के दरबार में कोई प्रस्तुत-कर्त्ता न हो—यह कैसे माना जा सकता है ? ऐसी दशा में अपनी विनयपत्रिका उस प्रस्तुतकर्त्ता द्वारा न पहुँचाकर सीधे जाकर स्वयं प्रस्तुत कर देना भी विनय की पद्धति के प्रतिकूल कार्य होगा। तुलसी ऐसा कैसे कर सकते थे ? अतः उन्होंने भी हनुमानजी एवं लक्ष्मणजी से प्रार्थना की है कि उनकी विनयपत्रिका को राम के सम्मुख प्रस्तुत कर दें—

पयन-सुखन, रिपु-दमन, भरत सास, ससन दीन की ।
 निज निज अवसर सुधि किए, बलि जाऊँ ।
 दास आज पुजि है आस सीन की ।
 राज द्वार भली सब कहै साधु समीचीन की ।
 सुकृत सुजस साहिय कृपा स्वारथ परमारथ ।
 गति भए गति - बिहीन की ।

फिर वही हुआ जो तुलसी चाहते थे। राम के दरबार में जहाँ अनेक देवता विराजमान थे, लक्ष्मण ने हनुमान तथा भरत की रुचि देखकर तुलसी की 'विनयपत्रिका' प्रस्तुत कर दी और कहा—

कलिकालहु नाथ ! नाम सों परतोति-प्रीति
 एक किकर निबही है ।

दरबार के सब देवता तुलसी से अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न तो हो भी चुके थे, अतः जब 'विनयपत्रिका' प्रस्तुत हुई तथा लक्ष्मण ने कलिपुत्र में भी राम की भक्ति दृढ़तापूर्वक करने वाला एकमात्र भक्त तुलसी को घोषित किया तो तुरन्त वे सभी देवता कह उठे कि "हाँ, यह सब पूर्णतः सत्य है। हम लोग भी तुलसी की भक्ति की दृढ़ता को जानते हैं।"

तुलसी के शब्दों में—

सरल सभा सुनिर्स उठी, जानी रीति रही है ।

कृपा गरीब-निवाज की,

बेलत गरीब को साहब बांह गही है ।

और फिर—

बिहंसि राम कह्यो 'सत्य है,

सुधि में हूँ सहो है ।'

इन पक्तियों में "सुधि में हूँ सहो है" पक्ति से प्रतीत होता है कि राम को किसी ने पहले से ही तुलसी की सुधि, दिला दी थी । यह सुधि दिलाने वाला माता सीता के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है, जिनसे तुलसीदास जी पहले ही यह प्रार्थना कर चुके थे कि "सुधि चाह्यो बहुत करण बचा बलाइ ।" जब मातेस्वरी सीता ने तुलसी की 'सिप्यारिष' कर दी तब फिर भला उनकी 'विनय पत्रिका' अस्वीकृत कैसे हो सकती थी ? राम ने उसे स्वीकार कर लिया और तुलसी की विनय सफल हो गई, वे कृतकृत्य हो गए—

मुदित मास नावत, कानी तुलसी बनाय की,

बरी रघुनाथ हाथ सहो है ।

निष्कर्ष यह कि तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में प्रारम्भ से अन्त तक अत्यन्त सम्यक् रूप में राज-दरबार के नियमों का पालन करने हुए विनयपत्रिका प्रस्तुत करने की एक पूर्ण तथा सफल पद्धति का अनुसरण किया है । यह पद्धति इतनी प्रभावपूर्ण तथा सामाजिकता एवं मनोवैज्ञानिकता से भरी हुई है कि उसका अनुसरण करने वाला व्यक्ति अपनी विनयपत्रिका को विफल होते कभी नहीं देख सकता । राम को तुलसी ने अत्यन्त विनयशील बनकर मुन्दर हथ से प्रभावित किया है और अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की है ।

प्रश्न ७—उपयुक्त उद्धरण देने हुए 'विनयपत्रिका' में अन्तर्गत तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर—'विनयपत्रिका' में तुलसीदास ने रामभक्ति की प्रतिष्ठा की है । उन्होंने 'मानस' में अपने भक्त-रूप को जिस पद्धति में प्रकट किया है उसमें भिन्न पद्धति का अनुसरण करते उन्होंने विनय-पत्रिका में अपनी अत्यन्त रान-भक्ति का परिचय दिया है । उसमें हम उनके दार्शनिक विचारों की ठोस पृष्ठभूमि का दर्शन करते हैं । प्रारम्भ से अन्त तक समस्त 'विनयपत्रिका' की

पढ़ जाने पर उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का जो रूप हमारे सामने आता है, उसे निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत सरलता से समझा जा सकता है—

(१) जगत—तुलसी ने शंकराचार्य के प्रभाव को स्वीकार करते हुए संसार को मिथ्या माना है तथा लिखा है—

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।

देह-गेह-नेह जानि जैसे घन दामिनी ॥

सोयत सपने सहै संसृति सताप रे ।

बूढ़ो भृगुवारि, लायो जेवरो को साँप रे ॥

‘विनयपत्रिका’ की ये पंक्तियाँ तुलसी के जगत्-सम्बन्धी इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं कि जगत् भृगु-जल, रज्जु-सर्प तथा राजि के समान मिथ्या एवं भयंकर है । वे उसकी भ्रमात्मकता के सम्बन्ध में एक अन्य पद में लिखते हैं—

जग नभ-वाटिका रहो है फल फूलि रे ।

घुमै के से घोरहर देखि तू न भूलि रे ॥

वे यह मानते हैं कि मिथ्या होने पर भी यह जगत सत्य प्रतीत होता है, इसका कारण जीव का ईश्वर-कृपा से वंचित हो जाना है—

जद्यपि भूषा सत्य भासै

जब सगि नहि कृपा तुम्हारी ।

तुलसीदास के जगत्-सम्बन्धी दृष्टिकोण की केवल यही सीमा नहीं है । वे मिथ्या वस्तु के विषय में सत्यासत्य का विचार करना भी व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि उसके कारण जीव को अपना ज्ञान भी नहीं रहता । अतः वह जगत् के सम्बन्ध में सत्य, असत्य तथा सत्यासत्य सम्बन्धी तीनों दृष्टिकोणों को तीन भ्रम बताते हैं और इन्हीं तीनों से बाहर निकलने का परामर्श देते हैं—

कोउ कह सत्य, भूठ कह कोऊ

जुगल प्रबस कोउ भानै ।

तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम

सो आपन पहचानै ।

और इसका कारण यह है कि जगत् ब्रह्म की एक अनोखी रचना है—

वेसत तप रचना विचित्र भति,

समुझि मनहि मन रहिये ।

उसकी दृष्टि में जगत् “शून्य भीति पर बना चित्र” है, जिसमें कोई रंग नहीं है तथा यह चित्र इतना भयंकर है कि—

घोए मिटें न, मरें, भीति दुख
पाइय यहि तनु हेरे ।
रविकर नीर बसैं अति दाखन
मकर - रूप सेहि माहीं ।
खरन-हीन सो एसैं खराखर
पान करन जे जाहीं ।

मिथ्या जगत् की इस भयंकरता के कारण ही तुलसी मुक्ति के लिए आकुल है ।

(२) माया—प्रश्न यह है कि जो जगत् मिथ्या है, उसकी प्रतीति क्यों होती है । तुलसी ने ‘विनयपत्रिका’ में इस शंका का समाधान भी किया है । उन्होंने इस सम्बन्ध में शंकराचार्य के मायावाद की शरण ली है । माया को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं—

माया बस स्वयं बिसरायो,
तेहि भ्रम सैं बाधन दुख पायो ।

उन्होंने माया के सम्बन्ध में आगे लिखा है—

तेहि ईश की हों सरन,
जाकी बिषम माया गुनमई ।

जेहि किए जीव-निकाय बस,
रस-हीन दिन-दिन अति नई ।

यह माया ब्रह्म के अधीन है तथा जीव इसके अधीन है । तुलसीदास कहते हैं—

हौं अड़ भाँष ईस रघुराया ।

सुम मायापति हौं अस माया ॥

इस माया से जीव को तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक राम की इया न हो—

अस कछु समुझि परत रघुराया ।

बिनु तब इया ब्यासु बास-हित,

मोह न छूटे माया ।

जब प्रभु ही उमे बजिन करें, तभी वह माया जीव को अपने पाग से मुक्त कर सकती है—

हो हार्यो करि जतन विविध विधि
भतिसय प्रबल मने ।
तुलसीदास यत होइ सर्बहि ।
जय प्रेरक प्रभु बरज ।

माया को समझने के लिए वह ज्ञान लेना भी आवश्यक है कि तुलसी ने जिस प्रकार मानस में उसके 'विद्या-माया' और 'अविद्या माया' की भेद किए हैं, वैसा कोई भेद तो 'विनयपत्रिका' में स्पष्टतः नहीं किया, किन्तु उनकी दृष्टि में सीता 'विद्या-माया' का ही रूप है, जो जीव को ब्रह्म में लय कराने वाली है। वस्तुतः जगत् की भयकरता एवं भ्रमात्मकता का कारण राम की अविद्या माया है, जिसका तुलसी ने विस्तार से विनयपत्रिका में उल्लेख किया है। सीता की तो उन्होंने इस काव्य में भी प्रार्थना ही की है और अपने उठार नि लिए "कथं क अम्ब अवसर पाय" कहकर 'सिफारिश' ही कराई है।

(३) जीव—जगत् और माया-सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझ लेने के पश्चात् तुलसी के जीव-सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने का क्रम आता है। उन्होंने जहाँ जगत् और माया के सम्बन्ध में शङ्कराचार्य के प्रभाव को स्वीकार किया है, वहाँ जीव के सम्बन्ध में उनकी मान्यता कुछ भिन्न हो गई है। इसका कारण यह है कि शङ्कराचार्य सर्व-घिनृतक थे, जबकि तुलसी एक भक्त-कवि हैं। भक्ति के क्षेत्र में जीव और ब्रह्म की द्वैत-भावना आवश्यक होती है। यदि भक्त और भगवान् एक हैं तो फिर मुक्ति कामना किसकी और भक्ति किसकी तथा किसके द्वारा? वे यह तो मानते हैं कि जीव परमात्मा का ही एक अंश है; किन्तु परमात्मा से पृथक् होकर वह माया-जाल में फँस गया है। अतः वह अपने वास्तविक रूप को भी भूल गया है—

जिब जबतें हरि तें बिसगान्यो ।
तथ तें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस स्वरूप बिसरायो ।
तेहि भ्रम तें बाधन दुख पायो ॥

माया-बन्ध उमने स्वयं को कर्म-जाल में जकड़ दिया है। अतः वह ब्रह्म से होकर विवश बना विभिन्न योनियों में भटक रहा है—

ते निज करम-ओरि हड़ कीन्हीं ।

अपने करनि गाँठि रहि सीन्हीं ।

साते बरबस भयो अभागे,

ता कत गरम-बास-बुल आगे ।

वस्तुतः जीव का विमुक्त रूप तुलसी की दृष्टि में आनन्द-सिन्धु धष्य है—

आनन्द-सिन्धु धष्य तब बासा,

बिनु जाने कस मरति पियासा ?

जीव को द्वैत का आभास हमलिए होता है, क्योंकि वह जगत् में आकर विचार-ग्रस्त हो गया है । यदि वह समस्त विकारों का त्याग कर दे तो द्वैत-भावना के भ्रम से मुक्त हो सकता है—

जो निज भव परिहरि विकारा

तो कत ईस-जनित ससृति बुल

संसद सोड अपारा ?

वे यह मानते हैं कि जीव को यदि अपने यथार्थ रूप को पहचान कर मुक्ति पाती है तो जगत् के विध्वान्व को समझना ही होगा तथा उसे समझ कर उससे सम्बन्ध तोड़ना होगा—

तुलसिरास जग आबु सरिहन जब तपि निर्भुंजन जाई ।

तब तपि बसव उपाय करि मरिय सरिय रहि भाई ॥

(४) टीका—जीव का सम्बन्ध जगत् से स्थायी नहीं है, क्योंकि जगत् मिथ्या एव मायावन्त है । जीव का स्वरूप भी वह नहीं है, जो जगत् की भाँति के कारण प्रतीत होता है । वह वस्तुतः चिदश है । तब इस चिदश का कलं बना है ? तुलसी का मत है कि वह 'अंशों' निर्गुण तथा सगुण—दोनों रूपों वाला अनादि, अनन्त, अमर तथा अकृपुण है । राम को उन्होंने उसी रूप का सीमावन्त माना है तथा मिला है—

अपति रुचिबद्ध्यापमानन्द यद् बह्य

विग्रह-व्यक्त

सीमावन्तारी ।

विमल बह्मवि सुर सिद्ध सकोचबल,

विमल गूढ-मेह

नर-वेह्वारी ।

ये राम ही ब्रह्मा आदि के स्वामी, समार में मरण-प्रोक्षण-कर्ता तथा

सर्वकर्ता है—

कर्पमेवाह-साहू
असहज

×

विश्व-वीथि नर
सह

×

विश्वदूत विश्वहित
विश्व

तुलसी ने राम को सपुत्र मानते
हैं। वे कहते हैं—

अपच, अर्द्ध, अविश्व
अविश्व

तथा आये कहा है—

अहम सुन्दर सुन्दर
सुन्दर कर्प
सर्वदूत सर्वदूत सर्ववि
सर्व-सर्व
विश्व निर्मोह निर्मुक्त
विश्वानन्द विश्व
निर्गन्तव्य, निःकर्म, विश्व
विश्वविधि

इन्हीं राम के विश्व में तुलसी ने यह

अहमिक विनती करी
रविश्व कर्मचन्द जो
कोसिक भरत सुन्दर ज्यों
अभु मनहित हित को विश्व
हृदयो वाच आच आह्वी
सोच नमन काह्यो सही

×

×

राम-नाम-अहिमा करे काम मूख आको ।

साखी वेद पुरान हैं तुलसी तन साको ॥

बहने का आशय यह है कि तुलसी ने ईश्वर को अद्वैत तो माना ही है, साथ ही द्वैत भी माना है, क्योंकि उनके राम अज और अखण्ड होते हुए भी अवतार लेते हैं तथा जीव-मित्र रूप धारण कर अपनी लोक-लीला दिखाते तथा भक्तों के उदार में लीन होते हैं ।

(५) सिद्धान्त—अब प्रश्न यह उठता है कि वस्तुतः तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्त का रूप क्या है । 'विनयपत्रिका' के एक पद में उन्होंने इस सम्बन्ध में संकेत भी किया है । वे लिखते हैं—

केशव, कहि न जाइ का कहिए ।

हेतत सब रचना विचित्र अति समुक्ति मनहि मन रहिए ॥

सूय भीति पर चित्र रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे ।

घोये मिटै न, मरे भीति, दुख, पादय इहि तनु हेरे ॥

रविकार-नीर बसै अति दाघन मकर रूप तेहि माहीं ।

बरन-हीन 'सो प्रसं' धराधर, धान करम जे जाहीं ॥

बोड कह सत्य, भूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोड माने ।

हुनसिदास धरिहरें तीन भ्रम, सो आपन पहिचाने ॥

इसमें प्रकट है कि वे शंकर के अद्वैतवाद में पूर्णतः विश्वास नहीं करते । उनकी दृष्टि में उसमें भी भ्रम का अंग है । साथ ही द्वैतवाद को भी वे प्रमात्मक मानते हैं । उनका मत है कि द्वैताद्वैतवाद भी भ्रमपूर्ण है । अतः वे इन तीनों भ्रमों का परिस्थाय आवश्यक समझते हैं । ऐसा किए बिना जीव आत्मस्वरूप की नहीं पहचान सकता । केशव (ब्रह्मा) उनकी दृष्टि में अनिर्वचनीय होने के कारण अद्वैतवादान्तर्गत विद्यतवाद से उनका सिद्धान्त आ मिला है । किन्तु इतना तो स्पष्ट है ही कि वे अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि के प्रभावों को स्वीकार करते हुए भी इन सबसे भिन्न करना सिद्धान्त प्रतिपादित करने हैं, जिसे उन्होंने एक दार्शनिक के रूप में 'विनयपत्रिका' में स्पष्ट नहीं किया, अर्थात् एक भक्त के रूप में ही उसे अपनी अनुभूति में मिलाकर समस्त पदों में बिखरा दिया है । हम उनके उस सिद्धान्त को 'प्रतिवाद' के आतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते । तभी तो उन्होंने 'विनयपत्रिका' में सभी

अन्य धर्मों का स्थान-स्थान पर प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से विरोध किया है; यथा—

द्वैतवाद का विरोध—

सकल दृश्य निज उबर मेलि सोबे निद्रा तजि जोगी ।

सोइ हरिपद अनुभव परम सुख अतिसय द्वैत-वियोगी ॥

द्वैतवाद, अद्वैतवाद तथा द्वैताद्वैतवाद का विरोध—

कोउ कह सत्य, भूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मारन ।

तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचान ।

अद्वैतवाद का विरोध—

जो मुनि से पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्धि सयाने ।

सांख्यवाद का विरोध—

प्रभु गुन सुनि मन हरषि है मोर नयननि डरिहै ।

तुलसिदास भयो राम को विस्वास प्रेम सखि आनन्द

उभय डर भरिहै ॥

इन उदाहरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास ने इन सबसे भिन्न अपने भक्तिवाद का प्रतिपादन किया; किन्तु उस भक्तिवाद का रूप क्या है? विनयपत्रिका में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति का क्या प्रयोजन है? क्या तुलसी एक ईश्वर के उपासक न होकर विभिन्न देवताओं के उपासक हैं? इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना कठिन नहीं। तुलसी ने प्रत्येक देवता की स्तुति के अन्त में उससे उसकी भक्ति की याचना नहीं की, अपितु 'राम' की भक्ति ही मांगी है—

भांगत तुलसिदाम कर ओरे ।

बसहि रामसिय मानस मोरे ॥

उनके लिए राम के साकार और निराकार रूपों में कोई अन्तर नहीं है। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत—हर रूप में उनके लिए ईश्वर राम भय है।

(६) साधना—तुलसी के दार्शनिक विचारों को सिद्धान्त के रूप में समझ लेने पर साधना का प्रश्न और शेष रह जाता है। इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उन्होंने सांसारिक विकारों से रहित होने को साधना का प्रमुख अङ्ग माना है तथा “निरमल निरामय एकरस तेहि हर्ष-सोक न व्यापही” वाली अवस्था को पहुँचना आवश्यक बतलाया है। यह अवस्था तभी प्राप्त हो

सकती है, जबकि जीव पूर्णतः ब्रह्म (राम) पर आधित हो जाय । यह आश्रय-
भाव ही तुलसी की यह भक्ति-साधना है, जिसको उन्होंने सर्वशुलभ बत-
साया है—

रघुपति भक्ति सुलभ सुलकारी ।
सो त्रय-ताप-शोक-भय हारी ॥

किन्तु—

बिनु सासंग भक्ति नहि होई ।

और—

ते सब मिले द्वै जब सोई ।
जब द्वै दीनदयासु राघव
साधु संगत पाइए ।
जैहि बरस-परस समगमादिक
पाप-रासि मसाइए ।
जिनके मिले सुख दुख समान
अमानतादिक गुन भए ।
भव सोभ मोह विषाद जोष
सुबोध ते सहजहि गए ।

फिर—

सेवत साधु द्वैत भय भाग्य ।
धी रघुवीर खरन लो लाग्य ॥

और अन्त में वे यह कह देते हैं—

ग्यान भक्ति साधन अनेक सब साथ भूठ गए नाहीं ।

तुलसीदास हरि कृपा निदैं भ्रम यह भरोस मन भारी ॥

इस प्रकार तुलसीदास के विचार से हरि की कृपा होने पर अविद्या का
भाग होता है, फिर जीव को जिस आत्म-रूप की उपलब्धि होती है वही भक्ति
के क्षेत्र में उनकी साधना की अरमावस्था है । भक्ति और भगवान का ऐश्वर्य
स्थापित होने पर जीव को और कुछ प्राप्त करना केवल नहीं रह जाता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने 'दिनदयानिवा' में अपने दार्शनिक
दृष्टिकोण को अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है । उन्होंने विभिन्न
सिद्धांतों का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से माया,

जगत्, जीव, ब्रह्म आदि को समझा है तथा अपना स्वतन्त्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिसे 'भक्ति सिद्धान्त' की संज्ञा दी जा सकती है ।

प्रश्न ८—भक्तिकालीन जन-जीवन की प्रमुख समस्या क्या थी ? तत्कालीन दार्शनिक प्रवृत्तियों में निहित उस समस्या के विविध समाधानों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए 'विनय-पत्रिका' में तुलसी द्वारा प्रस्तुत किए गए उनके समाधान पर विचार कीजिए ।

उत्तर—तुलसी भक्तिकाल के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं । उनके काव्य में भक्ति की प्रधानता होती हुई भी तत्कालीन जन-जीवन की उपेक्षा नहीं की गई है । वस्तुतः 'स्वान्तः सुखाय' कहकर उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह 'बहुजन हिताय' हो गया है । उनके युग की जन-जीवन की जितनी समस्याएँ थीं, ध्यानपूर्वक देखने पर हमें उन सबका समाधान उनके काव्य में मिल जाता है । विनयपत्रिका भी इस मत का अपवाद नहीं है । अतः देखना यह है कि भक्तिकालीन जन-जीवन की प्रधान समस्या क्या थी । तत्कालीन दार्शनिक प्रवृत्तियों में उसके समाधान को क्या रूप मिला, तथा तुलसी ने अपनी विनय-पत्रिका में उसका कौन-सा समाधान प्रस्तुत किया ।

सबसे पहले स्वाभाविक रूप से भक्तिकालीन जीवन की प्रमुख समस्या को समझने के लिए हमारा ध्यान तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों की ओर जाता है । हम देखते हैं कि इस काल की परिस्थितियाँ जन-जीवन को प्रबल-भङ्गावात के समान झुकझोर रही थी । राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक किसी भी प्रकार की परिस्थिति ऐसी नहीं थी जिसमें हमें जन-जीवन के लिए अप-णित दुःखों की वृद्धि करने वाले तत्व नहीं मिलते हों । अतः जनता के आत्म-विश्वास को बुरी तरह झुकझोरा जा रहा था । सामान्य बुद्धि का मनुष्य जीवन-व्यापी विषमताओं के वास्तविक कारणों की खोज करने में असमर्थ था । उसे अपने जीवन में सर्वत्र दुःख, क्लेश और सन्ताप दिखाई देते थे । घोर निराशान्धकार उसे बार-बार अपने आलिवन-पाश में आवद्ध करने का प्रयत्न करता था । वस्तुतः इस युग के मानव समाज के सामने सबसे मयकर समस्या यह थी कि जागतिक दुःख, संकट, विफलता आदि का कारण क्या है और उससे किस प्रकार मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ? इस्लामी शासन विरोध करने पर भी देश में अपनी जड़ जमा रहा था । राणा प्रताप और उनके साथ मेवाड़ी रक्त की धारा भी इस्लामी प्रभुत्व की बाढ़ को रोकने में समर्थ नहीं

हुई थी। सभी प्रकार के अत्याचार सहते-सहते और उनका विरोध करते-करते जन-जीवन एक धुका था। किसी प्रकार जागतिक दुखों से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग सामान्य मनुष्य को नहीं सूझ रहा था।

बुद्ध और महावीर के युग में भी यह समस्या उठी थी, किन्तु इन दोनों मनीषी महात्माओं ने उसके आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत कर गताद्विधों के लिए जनता को मोन कर दिया था। उन्होंने अपने समाधानों में उपनिषदों का प्रभाव स्वीकार करते हुए कर्म-चक्र को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। ईसा की नवी गताब्दी में शंकराचार्य ने उन समाधानों का विरोध करके अपना नया समाधान प्रस्तुत किया था। उन्होंने जगत् को मिथ्या बतलाकर अप्रत्यक्षतः जीव और उसकी दुखानुभूतियों को भी मिथ्या घोषित किया था। किन्तु यह समाधान जनता को अपने भ्रम-जाल में अधिक समय तक नहीं उलझा सक्ता था, क्योंकि जीवन की बढोर वास्तविकाएँ उनके सामने थीं। रामानुज, निम्बार्क तथा मध्व—इन तीनों आचार्यों ने शंकर के पश्चात् इस दिशा में आध्यात्मिक प्रयत्न किए थे। रामानुजाचार्य ने सूरम जगत् को एक ईश्वर का अंग मानकर तथा उससे 'चिन्' (जीव) एवं 'स्थूल अविन' (जगत्) की उत्पत्ति बतलाकर यह प्रतिपादित किया था कि एक ईश्वर ही सर्वोपरि सर्वशक्तिमान तथा समस्त कर्मों का मूलकर्त्ता है। अतः जीव को जगत् में प्राप्त होने वाले समस्त दुःखादि का मूल कारण वही है, न कि कोई लौकिक शक्ति। निम्बार्क-चार्य ने ईश्वर में चिन् के साथ चिदम की प्रतिष्ठा करते हुए जीव को अपूर्ण तथा ईश्वराधीन माना है। मध्वाचार्य ने जीव को तीन बोटियों—(१) मुक्ति-योग्य, (२) निरय संसारी, एवं (३) तमोयोग्य—में विभाजित कर मुक्ति के (१) कर्म-क्षय, (२) उपाश्रित या लय, (३) अविद्यादि मायें तथा (४) भोग नामक चार भेद किए थे। कर्म-क्षय नाम की मुक्ति में उन्होंने प्रारम्भ कर्मों को बिना भोग के नष्ट न होने वाला घोषित किया था।

सात्पर्य यह कि जागतिक दुःखादि की समस्या बीड़ दुख से अन्निबाल के प्रारम्भ तक किसी-न-किसी रूप में बराबर मोह-वस्याप-जिगत्तों के मस्तिष्क में स्थान पाती आ रही थी तथा इस दीर्घकाल में उसके अनेक समाधान प्रस्तुत किए गए थे; किन्तु वे सब आध्यात्मिक समाधान थे, जिनका मूल-मंत्र था—निवृत्तिवाद, यद्यपि वे सभी समाधान किसी-न-किसी रूप में निवृत्ति-विराटों का पोषण करते आ रहे थे।

तुलसी अपने राम को—जीव को कर्म की प्रेरणा देने वाला, उसके कर्मफल का विधान करने वाला, भाग्य-लेख अर्थात् करने वाला, भवितव्यता निर्धारित करने वाला तथा दृष्ट्य रूप में जीवन की समस्त गतिविधि का विधान करने वाला मानते हैं। उन्होंने भक्ति और नियति का समन्वय करके जीवन के जागतिक दुखों की समस्या का एक सुनभा हुआ तथा सरल समाधान प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि ओ कुछ हरि करता है, वही होता है और हरि की कृपा प्राप्त करने के लिए सद्कर्म करना आवश्यक है। कुकर्मों से ईश्वर कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता; किन्तु जिसने जन्मान्तर में कुकर्म अधिक कर दाले हैं, उसे भी भयभीत तथा निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर की कृपा होने पर बड़े-बड़े पापों का जाल कट जाता है। इसलिए जागतिक दुखों की देखकर घबराना नहीं चाहिए। भक्ति द्वारा हरि-कृपा प्राप्त करनी चाहिए। यह हरि-कृपा ही जीव का भाग्य है, क्योंकि उसमें पुरुषार्थ का प्रवेश नहीं। भक्ति में साधना एवं आत्म-दान की प्रधानता होने से पुरुषार्थ की भावना आ सकती है, किन्तु जीवन में भवितव्य घटनाओं को बदला नहीं जा सकता। अतः ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके उसी के आश्रित हो जाने में तुलसी ने समस्त जागतिक दुखों का समाधान खोज निकाला है। उसकी दृष्टि में ओ कुछ ईश्वर की इच्छा है वही होगा, फिर उसके लिए दुखी होने की क्या आवश्यकता है ? जीव को स्वयं की भगवान् की शरण में छोड़कर पूर्णतः निश्चिन्त ही रहना चाहिए। फिर जागतिक दुखों का उसको अनुभव ही नहीं होगा। 'विनयपत्रिका' में भी तुलसी ने अपने युग की प्रबलतम मुख्य समस्या का भक्ति की भावभूमि पर यही नियतिवादी समाधान कई पक्षों में व्यक्त किया है, यथा—

तुलसी जीव के विरग्न दुखों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

माघत ही निसि-दिवस मर्यो ।

तब ही तें न भयो हरि । विर जब तें जिव नाम धर्यो ॥

बहु कासना विविध कंचुकि, मूषन सोभावि भर्यो ।

घर अरु अघर गगन जस यस में, कोन न स्वाँग कर्यो ॥

देव अनुज भुनि माग अनुज नहि, जावत कोउ उबर्यो ।

मेरो कुसह हरिद शेष दुख काहू तो न हर्यो ॥

तुमसी अपने राम को—जीव को कर्म की प्रेरणा देने वाला, उसके कर्मफल का विधान करने वाला, माय्य-लेख अंकित करने वाला, भविष्यता निर्धारित करने वाला तथा अदृश्य रूप में जीवन की समस्त गतिविधि का विधान करने वाला मानते हैं। उन्होंने भक्ति और नियति का समन्वय करके जीवन का जागतिक दुखों की समस्या का एक सुलझा हुआ तथा सरल समाधान प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि जो कुछ हरि करता है, वही होता है और हरि की कृपा प्राप्त करने के लिए सद्कर्म करना आवश्यक है। कुकर्मों से ईश्वर कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता, किन्तु जिसने जन्मास्तार में कुकर्म अधिक कर दाले हैं, उसे भी भयभीत तथा निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर की कृपा होने पर बड़े-बड़े पापों का जाल कट जाता है। इसलिए जाग-गिर दुःखों को देखकर घबराना नहीं चाहिए। भक्ति द्वारा हरि-कृपा प्राप्त करनी चाहिए। यह हरि-कृपा ही जीव का माय्य है, क्योंकि उसमें पुनर्पार्य का प्रवेश नहीं। भक्ति में साधना एवं आत्म-दान की प्रधानता होने से पुनर्पार्य की भावना आ सक्ती है, किन्तु जीवन में भविष्य घटनाओं को बदला नहीं आ सक्ता। अतः ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके उसी के आश्रित हो जाने में तुमसी ने समस्त जागतिक दुखों का समाधान खोज निकाला है। उसकी दृष्टि में जो कुछ ईश्वर को दुष्ट है वही होगा, फिर उसके लिए दुखी होने की क्या आवश्यकता है ? जीव की स्वयं की भगवान् की शरण में छोड़कर पूर्णतः निश्चिन्त हो रहना चाहिए। फिर जागतिक दुखों का उसकी अनुभव ही नहीं होगा। 'चिनमयत्रिहा' में भी तुमसी ने अपने युग की पूर्वोक्त मुख्य समस्या का भक्ति की भावभूमि पर यही नियतिवादी समाधान कई पदों में व्यक्त किया है; यथा—

तुमसी जीव के विरग्नत दुखों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

माजन ही निति-दिवस पर्यो ।

तब हो तें म भयो हरि । फिर जब तें त्रिष मास पर्यो ॥

बहु मासना बिबिध कंचुकि, भुवन लोभादि भर्यो ।

पर भद अघर गगन जस थल में, कीन न स्वीय कर्यो ॥

देव अनुभ मुनि माग अनुभ महि, जाँवत कीउ उबर्यो ।

मेरो बुलह बरिह होय दुख काहु लो न हर्यो ॥

इस धन्य दुःख का समाधान जीव की इगमिन्ग मही मिला, क्योंकि
रामधर्म की भूत दया है । लुगनी बहने है—

ऐसी मुहुना मा मन की ।

परिहार राम-धर्म-गुरुमहिता आन कस्त भोगवन की ॥

मो दुःखो मे निवृत्ति पाने के लिए राम की भक्ति करनी चाहिए ।
राम-आम के मोह-पन का नाश बन जाना चाहिए—

राम राम रदू, राम राम रदू, राम राम जपु जीहा ।

रामनाम-जपेहु-मोह को, मन । हटि होइ परीहा ॥

साथ ही उसे भगने कर्मों को गुप्तारना चाहिए, क्योंकि कुरे कर्म करने
ही वह दुःखों के जाल में उलझता है । यदि बिमाना विपरीत है, तो वह
की इच्छा करने पर भी दुःख ही पाएगा । जब तक जीव की करनी ठीक
तब तक उसे भयभीत ही रहना पड़ेगा—

निज करनी विपरीत देखि,

मोहि समुगि महा भय लागै ।

जद्यपि भान मनोरथ विधि बात,

तुल इच्छन तुल पावै ।

विप्रचार कर-हीन जया,

त्यारथ-विनु बिज बनावै ।

केवल राम का ही विश्वास दुःखों का नाश कर सकता है—

दुपीकेश तुनि माऊँ जाऊँ बलि,

अति भरोस जिय मोरे ।

तुलसिदास इग्निय संभव तुल,

हरे धनिहि प्रभु तोरे ॥

तुलसी कहते हैं कि हे जीव ! तुम्हें सदा कर्मजाल घेरे रहता है; अर्थात्
सदा नियति (ईश्वरेच्छा) के बशीभूत हो, कर्मानुसार दुःख पाता रहता
किन्तु ईश्वर तेरा साथ इस समय भी नहीं छोड़ता । तेरे कर्मों का तुम्हें भोग
कराता हुआ भी वह तेरी रक्षा के लिए तत्पर रहता है । अतः तू उसी
शरण में पहुँचकर अपने दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है—

तू निज करमजाल जहें घेरो ।

भीहरि संग सज्यो नहि तेरो ॥

बहु विधि प्रतिपादन प्रभु कीन्हों ।

परम कृपासु ग्यान तोहि दीन्हों ॥

×

×

×

ग्रह जानि तुलसीदास प्राप्त-हरन

रमावति गाइए ।

तुलसी यह भी जानते हैं कि राम कर्मों के अनुसार ही जीव पर कृपा करते हैं । अतः जन-जीवन-गत दुःखादि की समस्या का अन्त राम-भक्ति द्वारा भी तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि जीव अपने कर्मों को नहीं सुधार लेता । यही तुलसी की वह मांग्यता है जिसके अनुसार वे जन-जीवन की समस्याओं के पुष्ट आधार पर सलाह करना चाहते हैं । वे जागतिक जीव की सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

तंनिज करम-डोरि हड़ कीन्हों ।

अपने करनि गांठि यहि दीन्हों ॥

साते परबस बर्यो अभागे ।

सा फल गरम-आस-दुख आगे ॥

इसीलिए वे राम से विनय करते हैं—

जोनि बहुत जम किए करम सब विविध विधि,

अथम आधारन कछु हृदय नहि धरहुते ।

बीन हित भवित सरबाय समरथ प्रनतपाल,

बिस भृदुल निज गुननि अनुसरहुते ।

अपने कर्मों का ग्यान एवं राम की भक्ति, जो उपर्युक्त पक्तियों का सार है, तुलसी के मत ॥ जन-जीवन की भक्तिकालीन जागतिक दुःखादि की सबसे बड़ी उस समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान था, जिसका समाधान खोजने की महान् चेष्टा साम्प्रदायिक विभिन्न दार्शनिक प्रवृत्तियों में सन्निहित मिलती है ।

प्रश्न ६—‘विनयपत्रिका’ में तुलसी ने राम को किस रूप में चित्रित किया है ? सोदाहरण विवेचन कीजिए ।

उत्तर—तुलसी ने विनयपत्रिका लिखकर ‘राम’ से आत्मोद्धार की प्रार्थना की है । एतदर्थ उन्होंने विनय की एक विशेष पद्धति का अनुसरण किया है । अतः राम तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के लिए उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं

की भी स्तुति की है तथा अन्त में वे राम की धारण में स्थिर हो गए हैं। विनय के इस विस्तृत क्षेत्र में उनके राम का रूप भी पूर्णतः प्रकाश में आ गया है। हम उस रूप को विभिन्न देवताओं की स्तुति हैं लेकर अन्त तक की समस्त विनयावली में अत्यन्त स्पष्ट रूप में सरलतापूर्वक देय और समझ सकते हैं।

सबसे पहले यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'विनयपत्रिका' 'श्रीराम-चरितमानस' के समान कोई कथा-काव्य नहीं है। अतः उसमें हमें राम का वह रूप नहीं मिलता जो 'श्रीरामचरितमानस' में मिलता है। 'मानस' में तुलसी ने राम की भगवान का अवतार सिद्ध कर उनके समस्त लौकिक आचरण का चित्रण किया है। अतः उस काव्य में हम राम के रूप में ईश्वर-रूप की प्रतिष्ठा के साथ-साथ मानव-रूप की प्रतिष्ठा भी पाते हैं। माता-पिता, स्त्री, धन्धु-बान्धव, मित्र-शत्रु आदि के विभिन्न सम्पर्कों में तुलसी ने 'मानस' के राम को रखा है, अतः वे सामान्य मनुष्य की तरह लौकिक दुःख-सुख के अनुभवों सहित चित्रित मिलते हैं, परन्तु विनयपत्रिका एक भाव-प्रधान काव्य है। उसमें राम के उस रूप का चित्रण न तो सम्भव ही था और न अपेक्षित ही था। अतः देखना यह है कि उसमें उन्होंने राम को किस रूप में चित्रित किया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'विनयपत्रिका' में राम का रूप विभिन्न देवताओं की स्तुतियों एवं आत्मोद्धार के लिए लिखी गई विनयावली में नसी प्रकार समझा जा सकता है। सबसे पहले हमारा ध्यान राम और देवताओं के सम्बन्ध पर जाता है। हम देखते हैं कि तुलसी विभिन्न देवताओं की स्तुति तो करते हैं, किन्तु उनसे याचना 'राम-भक्ति' की ही करते हैं; यथा—

(१) गायत्री गनपति जगद्वन्दन ।

सकर-सुवन-भवानी - नन्दन ॥

× × ×

मंगल तुलसिदास कर जोरे ।

बर्साहि राम-सिय मानस मोरे ॥

(२) देहु काम-रिपु राम-चरन-रति ।

तुलसिदास कहै कृपानिधान ॥

(३) शीनदयातु हियाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥

× × ×

वेद-पुरान प्रगट जस भागें । तुलसी राम-भक्ति घर भागें ॥

(४) कुसह दोष-कुल बलनि, कद देवि दायी ।

× × ×

देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज,

राम धनस्याम तुलसी पपीहा ॥

इससे विद्व है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में राम को सर्वदेवोपरि आध्यात्मिक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है । सभी देवताओं ॥ उन्होंने राम की अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ता मानी है; यथा—गंगा की स्तुति में कहा गया है—

विष्णु-पद-सरोज जाति, ईस-सोस पर बिभासि,

त्रिपपासि, पुन्यरासि, पाप-छासिका ॥

× × ×

तुलसी तब तीर तीर सुमिरत रघुबस थीर,

बिछरति मति देहि मोह-महिष-कासिका ॥

इस प्रकार तुलसी ने विष्णु के पद-मल से निःसृत होने वाली गंगा से रामभक्ति की माधना की है । यहाँ उनका संकेत यही है कि राम उन्हीं विष्णु के अवतार हैं, जिनके पद-मल से गंगा का अवतरण हुआ है । काशी तथा चित्रकूट की भी स्तुति की है । काशी की स्तुति में 'राम नाम' के महत्त्व की स्पष्ट करते हुए तुलसी ने राम को विश्व का विकासकर्ता तथा ब्रह्मस्वरूप बतलाया है—

ब्रह्म जीव सग रामनाम जुग,

आखर बित्ब - बिकासी ।

× × ×

तुलसी बसि हरपुरी राम जगु,

जो भयो चहे सुपासी ॥

चित्रकूट की राम के चरणों से पवित्र बतलाया है । उन्होंने लिखा है कि जानकीनाथ श्रीराम ने इसके प्रभाव को सदा के लिए स्थिर कर दिया है—

भव-घोर धाम-हर सुख द्या हैं

अप्यो चिर प्रभाव जानकी-नाह ।

इस प्रकार राम का सम्बन्ध चित्रकूट से भी बताया है, किन्तु उनके अवतार में लेकर वही साक्षात् पुरुषने की चर्चा नहीं की है। उन्होंने वस्तुतः राम को सगुण और निगुण—दोनों ही रूपों में परमेश्वर माना है। वे देव-ताओं के भी उत्तम तथा अधिपति हैं, जानकी उनकी शक्ति तथा प्रिया हैं। वे जब जग में अवतार लेते हैं तो उसे पवित्र बना देते हैं। वागी उनके भक्तों की भूमि है तथा गंगा उनके चरणों की पावनता है, जो जलधारा के रूप में जगत को पावन बना रही है। तुलसी ने अवतारी राम के गण—भरत, लक्ष्मण एवं गनुष्य की भी स्तुति की है, किन्तु उनके सम्पर्क में रहकर भी तुलसी ने राम के अवतारी रूप का चित्रण नहीं किया, स्मरण-मात्र किया है। यही बात हनुमान के लिए की गई स्तुति को लेकर भी कही जा सकती है।

वस्तुतः विनयपत्रिका में तुलसी के राम का क्या रूप है, यह श्रीर स्तुति प्रसंग में ही विशेष स्पष्ट हुआ है। उन्होंने इस प्रसंग में यह स्पष्ट किया है कि राम 'सच्चिदानन्द', 'परब्रह्म' तथा 'सीतावतारी' हैं—

सच्चिद्व्यापकानन्द यद्,

ब्रह्म विग्रह-रूपक सीतावतारी ।

और यह भी बता दिया है कि वे अवतार क्यों लेते हैं—

बिकल ब्रह्माहि सुर सिद्ध संकोचवत्,

विमल गुन - गेह भर - देहधारी ॥

इस प्रसंग में तुलसी ने रामावतार की अत्यन्त संक्षेप में चर्चा भी कर दी है; यथा—

जयति कीसलाधीस कल्याण कीसल-सुता,

कुसल कैवल्य-फल खाद्य धारी ।

× × ×

जयति रिपि-मल-पाल, समन-सज्जन-शाल,

सापबस - मुनिबधू - पापहारी ।

भजि भवचाप, बलि दाप भूपावसी,

सहित भूगुनाय नतमाय धारी ॥

× × ×

चित्रकुटाद्रि विष्ण्याद्रि बंडकविपिन,
धन्यकृत, पुण्यधानन - बिहारी ॥

× × ×

जयति खर-त्रिसिर-दूषन-चतुर्दंत-सहस्र-
सुभट - मारीच - संहारकर्ता ।

गृध्र-सहरो - भस्ति - बिबल कदना-सिपू,
चरित निरुपायि, त्रिविपतिहर्ता ॥

जयति मदमय कुबजय बधि,
बासि बलसासि बधि, करन सुधीब राजा ।

सुभट-मर्द-भालु-कटक सघट समत,
नमत पद रावनानुज निवाजा ॥

जयति पायोधि - वृत्त - सेन - वीतुक-हेतु
बाल मन अगम लई सलकि लखा ।

× × ×

जयति सीमित्रि - सीता - लखिब सहिन
बने पुष्पकावडु निज राजपागो ।

हास तुलसी मुदित अथवासासी सखल,
राम भे मूष बंदेहि रानी ॥

ब्रह्मर की समान बधा सक्षेप से कह जाने पर भी इन पंक्तियों में राम
का असीमिद्व क्त ही प्रधान है, सीविष सीताओं का महत्त्व दिखाकर उसकी
व्यापक प्रतिष्ठा की गई है । प्रधान देने की बात यह है कि एक ओर तो
तुलसी ने लखिबदानन्द कहा बतलाया है, दूसरी ओर उनको सीताशरीरों में
माना है, किन्तु दोनों में उनको 'राय' सम्बन्धी जो स्थायी धारणाएँ हैं,
भ्रष्ट हुई हैं । यद्यपि कृष्ण भी कहा वे ही सीताबहार हैं, किन्तु तुलसी
कहने कहा—राय—को कृष्ण-रूप में सीताबहारों नहीं दिखाया । एक बिदे
बात यह और मिलती है कि तुलसी ने हरि और हर—दोनों का बन्देद स्थान
दिखा है तथा राम की स्तुति की है; तथा—

बनुज-बन-बहल, पुन-पुन, दोविष, बंदरि-

आनरदासद्विवासी ॥

सभु सिव द्रव संकर, भयंकर
भीम, धोर तेजायतन, क्रोध-रासी ॥

× × ×

नीलजसदाभतनु श्याम, बहु काम दृढि,
राम राजीवसोचन कृपाला ॥
कंसु - कपूर वपुषयस निर्मल
भोति, सटासुर-सटिनि सित सुमन माला ॥

× × ×

मह्य व्यापक अकल सफल पर, परमहित,
ग्यान - गोतीत गुन - वृत्ति - हर्ता ।
सिधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र गीरीस, भव,
दक्ष - मल मलिन - विध्वंसकर्ता ।

× × ×

विष्णु - सिव - लोक - सोपान-सम सर्वदा,
धरति तुलसीदास बिसद बानी ।

तुलसी के विष्णु और शिव के अभेद रूप 'राम' उनके हृदय में किस रूप में बिराजमान रहते हैं; यह निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

जानकीनाथ रघुनाथ रामादि-तम सरनि
ताकभ्यतनु, तेजधाम ।

सच्चिदानंद, आनंदकंठाकर, बिन्द-
बिलास रामाभिराम ।

नीलनय-वारिधर भुभग सुभकर्तिकर ।
पीत कीसेय धरवसन-धारी ।

रत्न हाटक जटित मुकुट भंडित भोति,
भानु-सत-सटस उद्योतकारी ।

सयन ॥ इस, भास तिलक, भ्रूवधिर अति,
अरुन-अभोज-सोचन बिसाल ।

बक अबलोक, प्रेमीयय - सोकापहं
मार-रिपु-हृदय - धानस - मराल ॥

नासिका चारु, मुकुपोत, द्विज घण्टुति,
 अघर बिबोपमा मधुरहास ।
 कंठ धर, धिबुक धर, मचन गम्भीरतर,
 सत्य सक्ल्प, मुरप्रास-नासं ॥
 मुमन सुबिचित्र मयतुलसिकावत-युत
 मृदुल बनमाल उर-भ्राजमानं ।

तुलसी ने अपने राम को सन्तों का सन्ताप हरने वाला तथा महाप्रलय के समय सारे विश्व को अपने में विधाम देने वाला बताया है—

सन्त-सन्तापहर बिस्व-विधामकर,
 राम कामारि - अभिरामकारी ।
 सुद्विबोधापतन, सच्चिदानन्दन,
 सज्जनानन्द - बह्वं सरसरी ।

तथा लिखा है कि वे राम—

निरय, निर्मुक्त, सयुक्तगुन, निर्गुनान्त,
 भगवत निषाधक निर्वन्ता ॥
 बिस्व-धोषन-भरम, बिस्व-कारन-करन,
 सरन - तुलसीदास - प्रास - हता ॥

इन्ही राम को विचित्र जगत् की रचना करने वाला बताकर तुलसी ने लिखा है—

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।
 देखत तब रचना बिचित्र अति ॥
 समुक्ति भनहि मन रहिये ।
 सुन्य भीति पर चित्र-रग नहि ॥
 तनु बिनु तिसा चितेरे ।—आदि

इस प्रकार जगत् का चित्रकार—राम, तुलसी की दृष्टि में बिना शरीर का है, स्पष्ट है कि तुलसी ने राम के रूप में 'निराकार' रूप को भी प्रतिष्ठा की है । किन्तु साथ ही यह भी अनेक पदों में लिखा है कि वे निर्गुण ब्रह्म ही सहृदय बनकर दोनों पर कृपा भी करते हैं । तुलसी की दृष्टि में 'राम' ऐसी शक्ति है, जिनमें दोन का द्विज करने वाली चरम कल्याण सन्निहित है । वे कहते हैं—

ऐसे राम बीन-हीनकारी ।

अनि कोयल बदनामिषान बिनु कारण परउपकारी ॥

इसीलिए वे अवतार लेने हैं । मुमगी ने अनेक उदाहरण देकर 'राम' के रूप में बीन-वशसता का विनय किया है—

सापन-हीन बीन नित्र-अघ-वत,

सिता भई मुनि गारी ।

×

×

×

अघम जाति सबरी जोषित कइ....

....तोड रुपनाथ उगारी ॥

सारांश यह कि विनयपत्रिका में तुलसी ने राम के रूप को अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । उन्होंने राम में सगुण और निर्गुण—दोनों रूपों की तो प्रतिष्ठा की ही है, साथ ही लौकिक एवं अलौकिक—दोनों प्रकार के उनके महान् परिचय का उन रूपों में उद्घाटन भी किया है । इस प्रकार विनय-पत्रिका में तुलसी के राम का रूप पूर्ण ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ है । यह भक्त और शक्ती—दोनों के लिए समान रूप से ग्राह्य तथा माननीय है ।

प्रश्न १०—तुलसी के जगत, जीव एवं ब्रह्म-त्रिविक विचारों को तोड़ाहरण स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर—प्रश्न ६ का उत्तर दीजिए ।

प्रश्न ११—सिद्ध कीजिए कि विनयपत्रिका यथाक्रम से रचा हुआ विनय का एक महत्त्वपूर्ण काव्य है ।

उत्तर—प्रश्न ५ का उत्तर देखिए ।

प्रश्न १२—सिद्ध कीजिए कि विनयपत्रिका भक्तों के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसके भीतर बिलवाई देती है ।

उत्तर—विनयपत्रिका में तुलसी की भक्ति-भावना का व्यापक रूप में उन्मेष हुआ है । उन्होंने उसमें अपना हृदय खोलकर रख दिया है तथा भक्ति की पूर्ण पद्धति का अनुसरण करते हुए राम ॥ अपने उद्धार की प्रार्थना की है । यही कारण है कि यह अन्य भक्तों के हृदय का सर्वस्व बन गया है । प्रारम्भ ॥ अन्त तक हम उसमें तुलसी के भक्त-हृदय की अद्भुत तन्मयता के दर्शन करते हैं ।

तुलसी की भक्ति-पद्धति का प्रथम सोपान राम के प्रति अनुराग और जग के प्रति विराग-भाव का जाग्रण है । भक्त जब ससार से अपने मन को मो कर राम के चरणों में लीन हो जाता है, तभी वह भक्ति के प्रथम सोपान प पड़ता है । किन्तु ऐसा कर सकना जीव के लिए सरल नहीं है । इसीलिए भक्त तुलसी ने बिनयपत्रिका के प्रारम्भ में 'राम चरन रति' की विभिन्न देव देवताओं से याचना की है । भक्त के हृदय की राम के प्रति यह रागात्मकता ही उसे भक्ति के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार दिलाने वाली है अतः तुलसी कहते हैं—

भगित तुलसिदास कर जोरे ।

बसहि राम-सिय भानस मोरे ॥

तथा—

वेद-पुराण प्रगट जस जाग ।

तुलसी राम-भगति अर माँग ॥

आगे शिवजी से भी उन्होंने ऐसी ही याचना की है—

देहु काम-रिपु, राम-चरन-रति,

तुलसिदास कहैं कृपानिधान ॥

जब भक्त को 'राम-चरन-रति' मिल जाती है, तब वह स्वतः भक्ति जागे के सोपानों पर बढ़ने लगता है । उस समय उसे सासारिक सुखों कामना नहीं रहती । तभी उसे ससार के प्रति बिमल वैराग्य प्राप्त हो है । यह वैराग्य ही राम-भक्ति के क्षेत्र का आगे का सोपान है, किन्तु वैराग्य प्राप्त करने के लिए तुलसी को अपने मन को बार-बार प्रबोधन पड़ता है—

मन, इतनोई या तन को परम फलु ।

सब अग सुमग बिन्दुमाधव-द्वि,

तजि सुभाव, अवलोक एक पलु ॥

तथा

मन पछितै अवसर बीते ।

इतन बेह पाइ हरिपव भनु,

करम, बचन अब ही से ॥

अथ नाथहि अनुरागु जागु जइ,
 त्यागु बुरासा ओ ते ।
 युक्त न काम-अग्नि तुलसी
 कहैं, विषय-भोग बहुत घी ते ॥

वे आगे कहते हैं—

मन मेरे, मानहि सिल मेरी ।
 ओ निज भक्ति सहै हरि केरी ॥
 उर मानहि प्रमु-कृत हित जेते ।
 सेयहि सजे अपनपी जेते ॥
 बुल सुल अथ अपमान-बड़ाई ।
 सय सम सेलहि विपति बिहाई ॥
 सुनु सठ काल-ग्रहित यह बेही ।
 जनि तेहि लागि बिरूपहि केही ।
 तुलसिदास बिनु अति मति आये ।
 मिलाहि न राम कपट-सौ आये ।

इसीलिए तुलसी यह भी कहते हैं कि मन यदि समझा नहीं, उसमें वैराग्य नहीं आया तो वह 'राम-चरन-रति' के अभाव में भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता । पहले कहा जा चुका है कि भक्ति के दुर्य पर आरोहण के लिए वैराग्य-भाव एक महत्वपूर्ण सोपान है । तुलसी वैराग्य के अभाव में भक्ति का भी अभाव मानते हैं—

मैं जानी हरिपद-रति नाही ।
 सपनेहुं नहि बिराग मन माहीं ।
 ओ रघुबीर-चरन अनुरागे ।
 तिन्ह सख भोग रोग सम त्यागे ॥

'वैराग्य' के पश्चात् तुलसी की भक्ति-पद्धति में 'सन्तोष' का सोपान आता जिसके मनोरम सन्तोष की सीमा का स्पर्श नहीं करते, वह भक्ति की को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ? विनयपत्रिका में भी तुलसी ने यह कामना व्यक्त की है—

✓ सबहुँक हों यहि रहनि रहोंगो ।

धो रघुनाथ-कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहीगो ।

अपानाभ संतोष सदा, काहु सों कछु न चहोंगो ।

जब जीव इस पथ पर अग्रसर हो जाता है, तभी उसे अविघ्न हरि-भक्ति की प्राप्ति होती है—

तुलसिरास प्रभु यहि पथ रहि ।

अविघ्न हरि-भक्ति लहीगो ।

भक्त के लिए विनम्र होना भी अत्यन्त आवश्यक है । जब तक 'अहं' भाव शेष रहता है, तब तक भक्ति नहीं की जा सकती । 'विनयपत्रिका' में तुलसी जी विनम्रता अत्यन्त विशद् रूप में विव्रित हुई है । उनका दैव्य चरम सीमा की पहुँच गया है । भक्त के हृदय की पूर्णता हमें तुलसी के दैव्य को विव्रित करने वाले पदों में अत्यन्त सरस रूप में दृष्टिगोचर होती है; यथा—

मेरो भक्तो जियो राम आपनी भलाई ।

हैं तो साईं झोही, ये सेवक-हित साईं ॥

✓ राम सों बड़ो है बीन, मोसो बीन छोटी ।

राम सों खरी है बीन, मोसो बीन खोटी ॥

भोक कहै राम को गुलाम हौं बहावों ।

एतो बड़ो अपराध भी, न मन बावों ॥

पाव-पावे छड़े तुन तुलसी ज्यों मोचे

बोरत न बारि ताहि जानि आपु मोचे ॥

इन पंक्तियों में सधमुच भक्त का मन्त्रा हृदय बोल रहा है । ये पंक्तियाँ विनयपत्रिका की भक्तों के हृदय का सर्वस्व पोषित करती हैं । एक अन्य उदाहरण देखिये, जिसमें भक्त-हृदय की पूर्ण मीठी मियतों हे—

✓ वहाँ जाऊँ, वहाँ बहो, वो मुन बीन को ।

त्रिभुवन तुही गति सब जगहोन को ॥

अप जगदीश घर घरनि-धनेरे हूँ ।

निराधार के आधार गुनगन तेरे हूँ ॥

मन्तराज-बाज कणराज तलियाँ पायो को ।

मोसो मोसो मोसो मोसो मोसो मोसो ॥

मोते कूर कायर कृपूत कौड़ी आध के ।
 किये बहुमोल तैं करैया गोघ आध के ॥
 तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि बनंगी ।
 प्रभु की विलंब-अंब होय-मुख जनंगी ॥

भक्ति को प्रेमरूपा तथा गोपी नामक दो भेदों में विभाजित किया गया है । गोपी भक्ति को सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी नाम के तीन उपभेदों में विभाजित किया गया है । सात्त्विकी भक्ति में उपासना प्रधान होती है, राजसी-भक्ति मूर्तिपूजा-परक होती है तथा तामसी-भक्ति हिंसा पर आधारित होती है । तुलसी की दिनयपनिका में प्रेमरूपा भक्ति की तो प्रधानता है ही, साथ ही सात्त्विकी गोपी भक्ति को भी स्थान मिला है । वे कहते हैं—

संजम जप तप नेम धरम सब बहु भेषज समुदाई ।
 तुलसिदास भयरोग रामपद प्रेमहीन नहि जाई ॥

किन्तु प्रेमरूपा भक्ति भक्त की तीन कोटियों पर आधारित रहती है । भक्त का प्रेम 'गीण', 'मुख्य' और 'अनन्य'—तीन प्रकार का होता है । तुलसी का प्रेम—अनन्य प्रेम है । अतः उनकी भक्ति भी 'अनन्य भक्ति' है । वे स्वयं तो चातक और राम को भेष मानकर भक्ति की तन्मयता प्रदर्शित करते हैं । उन्होंने इस तन्मयता के कारण मोक्ष की भी उपेक्षा की है । वे अपनी भक्ति का कोई प्रतिफल नहीं चाहते—

घहौं न सुगति, न सुमति संसति,
 कछु रिधि सिधि बिपुल दइई ।
 हेतु रहित अनुराग नाथ-पद,
 बढ़ी अनुदिन अधिकारी ॥

तुलसी ने अपनी यह निष्काम भक्ति 'दास्य' और 'आत्मनिवेदन' भावों से साध व्यक्त की है । भक्त के निर्मल हृदय की माँकी हमें उनकी इस प्रकार की उक्तियों में मिलती है; यथा—

- (१) नातो नेह नाथ सो करि सब नातो नेत बहै हौं ।
 यह छर भर ताहि तुलसी जम जाको दास कहै हौं ॥
- (२) यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे ।
 तुलसिदास यह विपति बाँगुरो तुमहि सौं बने निबेरे ॥

तुलसी ने नवधा भक्ति की पद्धति का भी अनुसरण विनयपत्रिका में किया है और इस प्रकार भक्त-हृदय की अद्भुत भाँकी प्रस्तुत की है । भगवान् के नाम, रूप और गुणादि का स्मरण करते हुए वे लिखते हैं—

नाथ कृपा ही को पंच चितवत धीन ही दिन राति ।

भगवान् के चरणों की सेवा का उदाहरण हमें इन पंक्तियों में मिलता है—

धौ हरि-गुह-गह-कमल भजतु मन तजि अभिमान ।

जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान् ॥

भगवान् की बन्दना का उदाहरण—

बन्दी रघुपति कवनानिधान ।

जाते छुटै भव भैरव-ग्यान ॥

वास-भाव का उल्लेख—

नाथ नाइ नाम सों कहीं, हाथ जोरि खर्यो हौं ।

तथा नाम-समर्पण का भाव इन पंक्तियों में व्यक्त है—

✓ जाउँ बही, ठौर है बही देव । बुझित धीन को ।

इस प्रकार नवधा भक्ति की पद्धति का अनुसरण करते हुए तुलसी भक्ति की उच्चतम अवस्था की पहुँच गए हैं । वे स्वयं को सब प्रकार में पापी और दोषी ठहराते हैं तथा आराध्य की पवित्रता तथा श्रेष्ठता का बार-बार प्रतिपादन करते हैं । वे कहते हैं—

कैसे देखें नाथहि तोरि ।

काम-सौलुष भ्रमन मन हरि, भगति परिहरि तोरि ।

तथा—

✓ है प्रभु मेरोई सब दोष ।

सौसाँतप, कृपानु, नाथ अनाथ, आरत-पोष ।

उन्होंने यही तर्क कह दिया है—

प्रभु की कड़ाई बड़ी आपनो छोटाई छोटी,

प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-वीरता ।

वे अपने मुख से किसी अन्य का नाम उच्चरित नहीं करना चाहते । वे राम के सिवाय अन्य किसी के नहीं हैं । अतः कहते हैं—

गरंगी जीह जो कहीं ओर को ही ।

जानकी जीवन ! जनम जग उपायो

तिहारेंहि बौर को ही ।

उन्हें राम के अतिरिक्त किसी का भरोसा नहीं है—

भरोसा जाहि दूसरो सो करो ।

✓ मोको तो राम को नाम बसपतक बलि बत्मान करो ।

करम, उपासन, ग्यान, वेदमत सो सब भक्ति नरो ॥

भवत की राम के प्रति यह अटूट आगविन विनयपत्रिका की भक्ति श्रेष्ठता को व्यक्त करती है—

✓राम राखरो नाम मेरो मातृ विनु है ।

सुजन सनेहो गुरु साहब सदा सुदुद

राम नाम प्रेम मन अविच्छन्न दितु है ।

सारांश यह कि विनयपत्रिका में भक्ति की पूर्ण पद्धति दिखाई देती है। उसमें तुलसी ने अपनी अनन्यता का चित्रण करके उसे भक्तों के हृदय का सर्वस्व बना दिया है ।

प्रश्न ११—“विनयपत्रिका में तुलसी ■ दैन्य-भाव की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति मिलती है ।” इस कथन पर विस्तार से विचार कीजिए ।

उत्तर—‘विनयपत्रिका’ एक विनय-प्रधान काव्य है । अतः उसमें दैन्य-भाव की अभिव्यक्ति स्वामाधिक है । तुलसी की भक्ति ‘अनन्य भाव’ की कोटि में आती है । वे रामरूपी घन के प्रेम में दिन-रात रट लगाने वाले भक्त-चातक हैं—‘राम नाम-नव-मेह को मन ! हठि होहि पपीहा ।’ अतः वे अपने आराध्य से अपनी कोई भी दुर्बलता नहीं छिपाना चाहते । उनकी भक्ति दास्य-भाव के अन्तर्गत मानी जाती है । दास अपने प्रभु से सब प्रकार छोटा होता है । तुलसी भी राम की शरण में अपनी दीनता के कारण ही गए हैं । ससार में उन्हें अपना कोई दिखाई नहीं दिया । अतः उन्होंने सभी देवताओं से भगवान् राम की शरण की याचना की है । उनकी इस याचना तथा भक्ति में उनके हृदय का दैन्य-भाव अत्यन्त विशद रूप में अभिव्यक्त हुआ है ।

तुलसीदास ‘मूढ़ भिखारी’ बनकर राम के देव-दरबार में पहुँचते हैं । वे हर एक देवता के आगे दीन बनकर राम-भक्ति की याचना करते हैं । जिस

देवता के सामने पहुँचते हैं, उसी को दीनों पर कृपा करने वाला बताकर उससे 'राम-राम-रति' दाँवने हैं; यथा—शिवजी की स्तुति करते हुए वे कहते हैं—

श्री कौण्डिन् संयु सन्नि भान ।

श्रीनन्दयानु भक्त-आरति-हृर सब प्रकार समरथ भगवान् ॥

X

X

X

✓ हेतु बाप-रिपु राम-भरत रति सुमतिदास कहें कृपानिधान ॥

X

X

X

बारी कहें संहर-सम नाही ।

श्रीनन्दयानु दिवोदं भावे, जायक सब सोहाही ॥

X

X

X

सुमतिदास से भुङ्ग भोगने, बहलें न देट अघाही ॥

बाना सीमा को अपनी दीनता बतलाते हुए वे उनसे राम को अपना स्मरण करा देने की प्रार्थना करते हैं—

✓ श्रीम सब अंगहीन श्रीम भलीन अघी अघाइ ।

नाम ले भरें उदर एक भ्रम-बासी-दास बहाइ ॥

इनमें राम के दिवाब अग्न दिती का भरोसा नहीं है । वे इतने अधिक दीन-दुखी हैं कि कोई अन्य उनकी पीड़ा को दूर नहीं कर सकता—

हृत्तो भरोतो नाहि, दासना उपासना की

बाह्य चिरंजीव मूर-नर मुनिगम की ।

गदाध के लाली, लारे, हाथी स्वाम लेकावेई

बहु तो न पीर रघुबीर । श्रीम जानकी ।

वे अत्यन्त दीन-दास के साथ राम से प्रार्थना करते हैं—

श्रीम को बन्धानु जानि हृत्तो न कोऊ ।

X

X

X

हू कलीब को निबाध, हो परीब सेरो ।

अनक कहिये हृत्तानु । सुमतिदास सेरो ॥

निम्नलिखित श्लोकों में सुमती का दीन-दास अत्यन्त निर्दोष रूप में अति-
दयालु रूप में बतले हैं—

तू दयालु, दीन हौ, तू दानि, हौ मिलारी ।
 हौ प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
 नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
 मो समान आरत नहि, आरतिहर तोसो ॥

अपनी दीन दशा का भली प्रकार अनुभव करके ही तुलसी राम के भवन-
 द्वार पर जा पड़े हैं । वे कहते हैं—

नाचत हो निसिदियस मर्यो ।

×

×

×

सुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीर्घ रहन पड़्यो ॥
 अपनी हीमता और मलीनता का परिचय देते हुए वे कहते हैं—
 माघध, मो समान जग माहीं ।
 सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, सीम-बिषय कोउ माहीं ॥

×

×

×

ताहि ते आयो सरन सबेरे ।
 ग्याम बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे ॥
 लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु किरत रंनि दिन घेरे ।
 तिनहि मिले मन भयो क्रुपय-रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥
 दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत खुति टेरे ।

×

×

×

सुलसिदास यह विपति बाँधुरो सुमहि सों बने निवेरे ॥
 सुलसीदास को अपने पापों का स्मरण करके अत्यधिक दीनता का अनुभव
 होता है—

नाथ सौं कीन बिनती कहि सुनाव्यो ।
 त्रिविध अनगिनत अवसोकि अथ आपने,
 सरन सनमुख होत सकुनि सिर नाव्यो ॥

वे राम के द्वार पर पड़े-पड़े अपनी दीनता का अनुभव करके कहते हैं—
 द्वार हौ भोर हो को आज ।
 रटत रिरिहा आरि और न कोर ही तें काज ।

मृत्यु की वे मरणा कर्म की दृष्टि का ही अर्थ है—
 है और इस प्रकार मरण-दण्ड का अर्थ है—
 नाम, का और मृत्यु का अर्थ है—

माय हुआ ही जो सब विषयों की ही निमित्त—
 मरणानु के कारणों की वेद का अर्थ है—
 की हृदि-मृत्यु-दण्ड मरण अन्तर्गत ही है—
 केहि सेवन माय ही मृत्यु का अर्थ है—
 मरणानु की मरणा का अर्थ है—

मरणा अन्तर्गत मरण-दण्ड—
 मरणा अन्तर्गत मरण-दण्ड—

माय-माय का अर्थ है—

माय माय माय की वही, माय अन्तर्गत मरण-दण्ड—
 तथा माय-मरण का माय इन विषयों के अर्थ है—

✓ माय वही, और है वही वेद । अन्तर्गत मरण-दण्ड—
 इस प्रकार मरणा मरण की दृष्टि का अर्थ है—
 की अन्तर्गत मरणा की दृष्टि का अर्थ है । के अर्थ का अर्थ है—
 दोषी अन्तर्गत है तथा माय-माय की विषयों तथा अन्तर्गत का अर्थ है—
 मरण वरते है । के अर्थ है—

मरण के अर्थ माय-माय ।

माय-माय-माय मरण-माय, मरण-माय-माय-माय—

तथा—

✓ है मरण मरणों सब दोष ।
 मरण-माय, मरण-माय, मरण-माय—
 मरण-माय मरण-माय मरण-माय—

मरण की मरणों मरण-माय मरण-माय—
 मरण की मरण-माय मरण-माय—
 के मरण मरण से मरण मरण का माय मरण-माय मरण-माय—
 मरण के मरण मरण मरण-माय मरण-माय—

तू ब्याप्त, बीन ही, तू बानि, हौ भिन्नारी ।
 ही प्रसिद्ध पातली, तू पाप-सुख-हारो ॥
 नाथ तू बनाय को, बनाय कोन मोतो ?
 मो समान भारत महि, भारतिहर तोतो ॥

अपनी दीन दशा का भसी प्रकार अनुभव करके ही तुलसी राम के भवन-
 द्वार पर आ पड़े हैं । ये कहते हैं—

नाथत हो नितिबिद्यत मर्यो ।

×

×

×

तुलसीदास निज भवन-द्वार प्रभु, बीज रहन पड़्यो ॥
 अपनी हीनता और मसीनता का परिचय देते हुए ये कहते हैं—
 नाथव, मो समान जग माही ।
 सब विधि हीन, मसीन, बीन अति, सीन-विषय कोउ माही ॥

×

×

×

ताहि से आयो सरन राखेरे ।

ग्यान विराग भगति साधन कछु सपनेहुं नाथ न मेरे ॥
 लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रंनि दिन घेरे ।
 तिनहि मिले मन भयो कृपय-रत फिरि तिहारेहि फेरे ॥
 दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत सुति डेरे ।

×

×

×

तुलसीदास यह विपति यागुरो तुमहि सों बने निखेरे ॥

तुलसीदास को अपने पापों का स्मरण करके अत्यधिक दीनता का अनुभव
 होता है—

नाथ सों कौन बिनसी कहि सुनावौ ।

त्रिविध अनगिनत अवलोकि अथ आपने,

सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौ ॥

वे राम के द्वार पर पड़े-पड़े अपनी दीनता का अनुभव करके कहते हैं—

द्वार हौ भोर हो को आज ।

रटत रिरिहा आरि भोर न कीर हो तें काज ।

कल्ल कराल दुकाल दाहन सब कुर्माति कुसाज ।
भीष जन, मन डँक, धँसी कोढ़ि में की लाज ॥

× × ×

जनम को भूखो भिलारी हों गरीब निवाज ।
पेट भरि सुसतिहि षेवाइय भर्माति-मुषा मुनाज ॥

वे दिन-रात दीन बनकर 'दीनदयाल' की कृपा का पय निहारते रहते हैं—
नाम, कृपा ही को पंच छितवत,
दीन हों दिन-राति ।

होइ धौ केहि काल दीनदयालु,
जानि न जाति ॥

वे राम के अतिरिक्त अन्य किसीको अपनी दीनता सुनाएँ ? राम के समान दीनदयालु अन्य कोई नहीं—

दीनदयालु दूसरो रहें यावों ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहें ? केहि दीनता सुनावों ॥

× × ×

अति सासथी काम-किकर जन, मुख रावरो कहावों ।
सुससी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावों ॥

सुससी अपने समान अन्य किसी को दीन नहीं मानते, इसीलिए वे राम की शरण में गए हैं—

तुम सम दीनदयालु न दीन कोउ भो सम,
कुनहु नृपति रघुराई ।
भो सम कुटिस-भौलमनि नहि, जग,
तुम सम हरि न हरन कुटिसाई ॥
हौ मन बचन करम पातक रत,
तुम कृपालु पतितन - पतिदाई ।
हौ अनाप प्रभु, तुम अनाप-हित,
जित यहि सुरति कबहुं नहि जाई ॥
हौ भारत, आरति-नासक तुम,
कीरति निषम पुराननि गाई ।

हों समीत तुम हरन सकल भय,
 कारन कवन कृपा बिसराई ॥
 तुम सुखधाम राम छम-भंजन,
 हों अति दुखित त्रिविधि छम पाई ।
 यह जिय जानि वास तुलसी कहें,
 राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥

तुलसी कहते हैं कि मैं इतना अधिक दीन हूँ कि मुझसे अपनी दीनता भी नहीं जाती । किन्तु राम से उसे कह डालने में भी मुझे सुखानुभव है—

कह्यो न परत, विनु कहे न रह्यो परत,
 बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि दीनता ।
 प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
 प्रभु की पुनीतता आपनी आप पीनता ॥

इसीलिए वे कहते हैं कि—

✓ जैसो हों तैसो राम राखरो जन, जनि परिहरिये,
 कृपा-सिधु, कोसल धनी ।
 सरनागत-पालक हरनि आपनी दरिए ।
 × × ×
 अपराधी तऊ आपनो, तुलसी न बिसरिये ।
 दूटियो बाह गरे परे, फूटेहू बिलोचन
 पीर होत हित करिये ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी ने विनयपत्रिका में अपना दैन्य-भाव न सीमा को पहुँचा दिया है । उन्होंने भक्ति-भाव के साथ अपनी दीनता अत्यन्त विगद् चित्रण करके राम को सुभाया है ।

प्रश्न १४—“विनयपत्रिका की भाषाभिव्यक्ति पर तुलसी की अन्य कृतियों अभिव्यक्त भावों का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है ।” इस कथन की सत्यता सोदाहरण विचार कीजिए ।

उत्तर—‘विनयपत्रिका’ तुलसी की वृद्धावस्था की कृति है । अतः इस में उनके हृदय ने मानो अपने भावों का सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुत करते हुए ईश्वर-

भक्ति के गहन-गम्भीर सागर में अवगाहन किया है। इस सर्वोदण में उनकी अन्य कृतियों के भाव भी विभिन्न रूपों में उनकी विनयावली में स्थान पा गए हैं। 'श्रीरामचरितमानस' से लेकर 'बरवें रामायण' प्रभृति सभी कृतियों की भावाभिभ्यक्ति का प्रभाव 'विनयपत्रिका' के भावों पर वहीं प्रत्यक्ष रूप में और वहीं अप्रत्यक्ष रूप में अधिकांश स्थलों पर पाया जाता है। 'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में उन्होंने जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है, वह 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड में भी व्यक्त हुई है और 'विनयपत्रिका' में भी चरम विस्तार की प्राप्ति हो उठी है। इस प्रवृत्ति के साथ उनके अनेक भाव ऐसे व्यक्त हुए हैं, जिन पर उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है।

'विनयपत्रिका' का प्रधान विषय 'भक्ति' है। 'कवितावली' में तुलसी ने स्वयं को राम की शरण में पड़ना कर सन्तोष साध लिया था। उस काव्य में वह 'राम' पर गर्व करते तथा एकमात्र उन्हें ही अपना सर्वस्व मानते मिलते हैं—

राखरो बहावों, गुन गावों राम राखरेई,

रोटी हूँ ही पावों राम राखरी ही कानि हों।

जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बढ़ी,

मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानि हों ॥

और विनयपत्रिका में भी वे इसी भाव को दूसरे शब्दों में यों व्यक्त करते हैं—

राम राखिए सरन, राखि भाए सब दिन,

विविध त्रिसोक तिहुँ काल न बपातु दूजो।

वे 'कवितावली' में अपने उन राम पर पूर्ण विश्वास करके निर्भय दिखाई देते हैं—

कीन की प्राप्त करै तुलसी,

जो पैं राखि हूँ राम तो मारिहै कोरे।

और 'विनयपत्रिका' में भी वे यही घोषणा इस प्रकार करते मिलते हैं—

तुलसीदास रघुवीर बाहुबल,

सदा अभय काहू न डरे।

'कवितावली' में वे स्वयं को अत्यन्त निम्नकोटि का बतलाकर अपने प्रभु का गौरव व्यक्त करते हैं—

हैं तो सदा सार को असवार,
तिहारोइ नाम गणन्द चढ़ायो ।

और 'विनयपत्रिका' में भी वे अपनी हीनता तथा राम की महत्ता उसी प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं—

राम सो बड़ो है कौन, मो सो कौन छोटी ?

राम सो सरो है कौन, मो सो कौन सोटी ?

'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम के नाम की महत्ता भी बड़े विस्तार से प्रमाण की है, जिसका भाव-साम्य हमें 'कवितावली' में ही नहीं, अन्य कृतियों में भी मिलता है; यथा—'विनयपत्रिका' में वे कहते हैं—

राम ते अधिक नाम करतब जेहि किए नगर-गत नामो ।

भए बजाइ बाहिने जो जपि तुलसीदास से नामो ॥

और 'कवितावली' में यही भाव यों मिलता है—

राम नाम को प्रभाव, पाव महिमा प्रताप,

तुलसी से जग मनियत महामुनी हो ।

भक्ति ही अभागो अनुराग तन राम-पद,

मूढ़ एतो बड़ो अंचरजु बेसि सुनी को ।

तथा 'बरवै रामायण' में—

राम जपत भए तुलसी तुलसीदास ।

कहकर 'श्रीरामचरितमानस' में राम के नाम की कलियुग के समस्त पापों का नाशकर्ता बताया गया है । तुलसी कहते हैं—

'नाम सकल कलि कलुष निकश्चन ।'

'दीहावली' में उन्होंने लिखा है—

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम नाम जपु राम ।

तुलसी तेरो है भक्तो आदि मध्य परिणाम ॥

राम की भक्ति में उन्होंने अपने मन को उसी प्रकार सीन किया है, जिस प्रकार मीन जल में सीन रहती है । उनकी भक्ति-सम्बन्धी यह धारणा विनय-पत्रिका में जिस रूप में मिलती है, उसी रूप में उनकी अन्य कृतियों में भी ई जाती है; यथा—

विनयपत्रिका में—सीतापति भक्ति सुरसरि-मग-भीनता ।

दोहावली में—गुनम प्रीति प्रीतम सबे, कहत करत सब कोइ ।

तुलसी भोन पुनीत ते, त्रिभुवन सबो न कोइ ॥

श्रीरामचरितमानस में—राम भर्षति जल मम मन मीना ।

किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना ॥

तुलसी ने राम के भावे अपनी दीनता दिखाते हुए जो भाव विनयपत्रिका में व्यक्त किए हैं, उन पर भी उनकी अन्य कृतियों में व्यक्त भावों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देना है; यथा—‘बरबे रामायण’ में वे लिखते हैं—

केहि गिनती महै, गिनती जस बन घास ।

नाम जपत भए तुलसी, तुलसीदास ॥

यही बात ‘कवितावली’ में यों कहते हैं—

साहिब मुजान जिस रघानहू को पछु कियो,

रामबोला नाम, हों गुलाम राम साहि को ।

और ‘विनयपत्रिका’ में इन्हीं पक्तियों से प्रभावित पक्तियाँ इस प्रकार मिलती हैं—

राम को गुलाम रामबोला राख्यो राम,

काम यह नाम छै हों कबहुँ कहत हों ।

वे जगत में किस प्रकार पेट के लिए दर-दर ठोकरें खाते फिरते रहे, इस तथ्य को उन्होंने जिस प्रकार ‘कवितावली’ में व्यक्त किया है, उसी भाव के साथ ‘विनयपत्रिका’ में भी, यथा—‘कवितावली’ में वे लिखते हैं—

जाति के सुजाति के सुजाति के पेटागि बस,

लाए टुक सबके विवित बात बुनी सो ।

और ‘विनयपत्रिका’ में इसी भाव को यों व्यक्त करते हैं—

फिर्यो ससात बिनु नाम उबर लगि,

दुखए दुलित मोहि हेरे ।

अपने जीवन पर प्रकाश डालने वाली कई बातें उन्होंने अपनी कृतियों में समान रूप से लिखी हैं; यथा—जाति के सम्बन्ध में वे विनयपत्रिका में लिखते हैं—

दियो मुकुल जनम सरीर सुन्दर,

हेतु जो कस चारि को ।

‘कवितावली’ में कहते हैं—

भक्ति भारत भूमि भले कुस जन्मि,
समाज सरीर भसो सहिके ।

विवाह के सम्बन्ध में ‘कवितावली’ में ये पंक्तियाँ मिलती हैं—

काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहव,
काहू की जाति बिगार न सोऊ ।

और ‘विनयपत्रिका’ में यही बात यों कही गई है—

मेरे ब्याह न बरेखी, जाति-पाति न बहत हौ ।

काशी की पावन-भूमि में साधना का जो आकर्षण तुलसी को दिखाई दिया है, वह उन्होंने ‘मानस’ में इस प्रकार व्यक्त किया है—

जहँ बसि संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ?

और ‘विनयपत्रिका’ में भी यही बात कुछ शब्दान्तर के साथ यों दुहराई गई है—

सेइय सहित सनेह बेहभरि, कामधेनु कसि कासी ।

‘कवितावली’ में उन्होंने अपने चित्त को चित्रकूट से जाने की जो चेष्टा इन शब्दों में व्यक्त की है—

ते सेइय सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो ।

वही भाव विनयपत्रिका में यों व्यक्त हुआ है—

अब चित्त छेतु चित्रकूटहि चलु ।

‘श्रीरामचरितमानस’ में जिन देवताओं की स्तुति उनके चरित्र की अभिव्यक्ति करके की गई है, अथवा ‘कवितावली’ में देवताओं का गुण-गान मुक्त छन्दों में पद्य-तन्त्र किया गया है, उन्हीं को ‘विनयपत्रिका’ में तुलसी ने अपने जीवन का सहायक मानकर स्तुति का पात्र बनाया है। राम के जिस रूप की कल्पना उन्होंने अपनी अन्य कृतियों में जिस भाव से की है, उसी भाव से कुछ अधिक गहराई के साथ विनयपत्रिका में की है। जीव, जगत्, माया—आदि के सम्बन्ध में भी उनके भाव प्रायः सभी कृतियों में सादृश्य रखते हैं। विनयपत्रिका में उन्होंने जगत को मिथ्या लिखा है—

तुलसी जागे ते जाय ताय तिहुँ ताय रे ।

राम नाम सुचि शचि सहज सुभाय रे ॥

ये पक्तियाँ 'श्रीरामचरितमानस' की इन पंक्तियों से भाव-सादृश्य रखती हैं—

भूठहु सत्य जाहि बिनु जानै । जिमि भुअंग बिनु रजु पहिचानै ॥

जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागै जया सपन-भ्रम जाई ॥

तुलसी ने बार-बार राम को माया का स्वामी घोषित किया है ।

'श्रीरामचरितमानस' में वे लिखते हैं—

अस जिय जानि भर्जहि मुनि मायापति भगवान ।

और 'विनयपत्रिका' में इसी भाव को विविध अन्तर के साथ यों व्यक्त करते हैं—

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया ।

तुम मायापति, हौं बस माया ॥

'श्रीरामचरितमानस' में प्रभु को माया का प्रेरक माना गया है—

एक रचइ जग गुन बस जाके ।

प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके ॥

'विनयपत्रिका' में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

तुलसिदास बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ।

भाव-सम्बन्धी इस आन्तरिक समानता के अतिरिक्त तुलसी ने अपने युग की बाह्य बातों को भी प्रायः विनयपत्रिका में अग्य दृष्टियों के सादृश्य के आधार पर ही रखा है; यथा—मानस में अपने युग के समाज के विषय में वे लिखते हैं—

बरन बरम नहि आलस जारी । लूति विरोध रत सब नरनारी ॥

द्विज लूति बचक मूप प्रजासन । बौठ नहि मान निषय अनुतासन ॥

और यही बात 'विनयपत्रिका' में यों लिखते हैं—

आयम बरन बरम विरहित जग लोक-बेब बरजार गई है ।

प्रजा पतित पाखण्ड धाप-रत अपने-अपने रस रई है ॥

राज-सभा के विषय में 'दोहावली' में लिखा है—

गोंड़ गेंवार नृपाल महि, धधन महा महिपाल ।

साय न दान न भेद बलि, केवल बड बराल ॥

यही भाव 'विनयपत्रिका' में यों व्यक्त हुआ है—

राज-सभाज समाज कोटि बटु करणत समुप बुधान नहि है ।

भीति प्रतीति शीति परिचित रति हेनुबाह हठि हेरि हई है ॥

गारांग यह है कि 'विनयविद्या' की भावप्रतिष्ठा गर तुलसी की अन्य कृतियों में अविश्वक्त भावों का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है : मानस, कविवर्य, शिवाजी, दोहावली, बरही-रामायण आदि में उन्होंने जीव, जगत्, ईश्वर, भक्ति आदि के विषय में तथा अपने एवं समाज के विषय में जो भाव व्यक्त किए हैं, उनमें तथा 'विनयविद्या' में व्यक्त भावों में पर्याप्त साम्य उपनयन होगा है ।

प्रश्न १२—'विनयविद्या' के भाव-सौन्दर्य की विस्तार में तोषाहृत्त समीक्षा कीजिए ।

उत्तर—भक्त-रसि होने के कारण तुलसी के काव्य में मानुषता का प्राधान्य है । उनकी सभी कृतियों में काव्यगत भाव-सौन्दर्य अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त मिलता है । विनयविद्या उन्होंने भक्ति-भाव में विभोर होकर लिखी है । अतः भक्ति सम्बन्धी विभिन्न भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हमें इस काव्य में मिलती है । वस्तुतः हृदय की अत्यन्त निर्मल तथा महत् सौन्दर्य गृष्टि का दर्शन इस काव्य में होता है । तुलसी की प्रार्थना जिस कम से भगवान् राम तक पहुँचती है, उस कम के साथ भक्त-हृदय की विभिन्न दशाओं का उन्होंने चित्रण कर दिया है । तत्परम्परा राम की शरण में पहुँच कर उनकी भाव-पारा सामुक्त क्षेत्र में बह निकली है । यहाँ पर्याप्त उद्भरण देकर हम विनयविद्या की भाव-निधि के उस अद्भुत सौन्दर्य का उद्घाटन करने की चेष्टा करते, जिसके कारण यह काव्य भक्त-रसियों का वन्द्यहार बना हुआ है ।

तुलसी ने राम-भक्ति की याचना करते हुए गणेशजी की स्तुति के परबार्थ शिवजी की स्तुति अत्यन्त भाव-विभोर होकर की है । उनकी दानशीलता का वर्णन करने के लिए उन्होंने अत्यन्त सरस वस्तुना निम्नांकित छन्द में की है । ब्रह्मा जीवों के भाग्य-विधाता हैं । शिवजी भोजे दानो हैं ; वे हर एक पर सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं और यथावाञ्छित फल दे डालते हैं । ब्रह्मा को इससे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि वे एक बार जो भाग्य निर्धारित कर देते हैं, उसे शिवजी की दानशीलता के कारण ही मीघ बदलना पड़ता है । देखिए, कंसी सरस भाव-व्यञ्जना है, इस पद में—

यावरो रावरो नाहू भवानो ।

दानि बड़ो, दिन देत, दए बिनु बेद-बड़ाई भानो ॥

निज घर की बरबात बिसोकहु, हौ तुम परम सयानी ।
 तिस को बई सम्पदा देखत, खी-सारदा सिहानी ॥
 जिनके भास तिली लिपि मेरी, सुख की नहि नितानी ।
 तिन रंजन हौ माक सेवारत, हौ आयो मरवानो ॥
 हुसो दीनता हुसियन के सुख, जाघरता अकृतानी ।
 यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीस भसी में आनी ॥
 प्रेम-प्रसंता-बिनय-व्यगजुत, सुनि बिधि की बरबानी ।
 तुलसी मुदित महेस मनहि मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥

प्रेम, प्रशंसा, बिनय, श्रवण, मोद आदि की एक साथ कंसी सरस ध्वजना इन पवित्रियों में की है । महेस के उत्साह एवं पार्वती की मुस्कान का कंसा नाटकीय भाव-विभ्रान्त इन पवित्रियों में उपस्थित हुआ है । अब सीता के प्रति की गई एक स्तुति में भी भावामिष्यवित का अद्भुत सौन्दर्य देखिए । तुलसी राम के पास तक अपनी विनयपत्रिका पहुँचाना चाहते हैं । उन्हें उसे केवल पहुँचाना ही नहीं है, अपितु स्वीकृत कराने के लिए सिफारिश भी करवानी है । अतः वे उसे राम तक ऐसे समय पहुँचाना चाहते हैं, जबकि उनका चित्त प्रसन्न हो—हृदय में किसी की करुण-दशा को सुनने की भावुकता हो । तुलसी सीता के पास पहुँचते हैं और उनको 'माँ' कहकर सम्बोधित करते हैं, ताकि उन्हें सीता का वारसत्य भाव प्राप्त हो सके । फिर वे उनसे अपनी विनयपत्रिका राम तक पहुँचाने का निवेदन करते हैं । इस निवेदन की प्रत्येक पंक्ति तुलसी ने भाव-सिन्धु में डूब कर लिखी है । वे कहते हैं कि—हे माता ! कभी, जब तुम्हें अवसर मिल जाय तब, राम को मेरी भी सुधि दिला देना । लेकिन उसके साथ वे एक शर्त भी रख देते हैं—यह यह कि उनकी सुधि दिलाने से पूर्व सीता राम के सम्मुख कोई अन्य करुण प्रसङ्ग अवश्य उपस्थित कर दें, ताकि तुलसी की करुण-महानी सुनने के लिए अपेक्षित मनोदशा को राम पहले से प्राप्त कर सें । अब तुलसी के दो शब्दों में उनकी भावामिष्यवित का सौन्दर्य परलिए । वे कहते हैं—

✓ कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।

मेरिओ सुधि छाइयो, कछु करन कथा असाइ ॥

दीन सब अगहोन धीन मसीन अधी अषाइ ।

राम सँ भरँ उबर एक प्रभु-बासी-बास कहाइ ॥

भूमि है 'सु है कौन', कहिषी नाम बसा जनाइ ।
 सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिअो बनि जाइ ॥
 जानकी जगजननि जन की किये वचन सहाइ ।
 तरे तुलसीदास भव, तव-नाथ-गुनगान गाइ ॥

इन पक्तियों में तुलसी के हृदय के भाव जिस सौन्दर्य के साथ व्यक्त हैं वह सौन्दर्य बहुत कम काव्यों में मिलेगा । अनुभूति की सचाई के साथ-साथ अभिव्यक्ति की सचाई भी काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए अपेक्षित होती है, जो इस पद में द्रष्टव्य है । काव्यगत भाव-सौन्दर्य की उत्कृष्टता इसी बात में है कि उसमें हृदय की निश्छल भाव से यथार्थ रूप में उन्मुक्त कर दिया जाय । तुलसी ने इस पद में वही किया है ।

अपने आराध्य भक्तोद्धारक मगवान् राम की शरण में पहुँचकर वे कितनी मायुकता के साथ सरल हृदय से विनय करते हैं—

मैं हरि, पतित-पावन सुने ।

मैं पतित तुम पतित-पावन, बोज बानक बने ॥
 व्याप गनिका गज अजामिल, साक्षि निगमनि भने ।
 और अधम अनेक तारे, जात कार्य पने ॥
 जानि नाम अजानि सीम्हे, नरक जनपूर मने ।
 बास तुलसी सरन मायो, राखिये अपने ॥

और फिर उनकी मायुकता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे सत्सार में नि सेवा के द्रवित होने वाला किसी अन्य को न पाकर कह उठते हैं—

ऐसी को उदार जग माही ।

बिनु सेवा जो द्रव्य बीन पर राम सरित कोऊ नाही ॥
 जो गति जोग विराग जतन करि नहि पायत मुनि ग्यानी ।
 सो गति देत गोप सबरो कहें प्रभु न बहुत जिम जानी ॥
 जो सपति बस सीस अरपि करि राखन सिव पहं सीन्हीं ।
 सो सपदा विभीषन कहें अति शकुच-सहित हरि बीन्हीं ॥
 तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहति मन मेरो ।
 तो भञ्जु राम, काम सब पुरन करे कृपानिधि तेरो ॥

और फिर उनकी भाव-प्रवणता इस सीमा तक पहुँच जाती है—

बबहूँक हो यह रहनि रहोंगो ।

- ✓ धोरधुनाय-कृपालु कृपा सें, सत सुभाव गहोंगो ॥
 जयासाम संतोष सदा, बाहू सों कछु न बहोंगो ।
 परहित-निरत निरन्तर मन-अम-बचन नेम निबहोंगो ॥
 पदप बचन अति दुसह खबन सुनि, सेहि पावक न बहोंगो ।
 बिगत मान, सम सोतस मन, पर गुन, नहि दोष कहोंगो ॥
 परिहरि देह-जनित-चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहोंगो ।
 तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति सहोंगो ॥

अभिलाषा का कितना निर्मल तथा निरद्वल भाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ ॥ ! इस उदाहरण से तुलसी के भावुक हृदय की कोमलता का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है ।

विनयपत्रिका के भाव सौन्दर्य की सरस अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने वाला एक अन्य उदाहरण लीजिए । राम को अपनी विनय सुनाते हुए तुलसीदास कहते हैं—

- माय, गुननाथ सुनि होत पित चाउ सो ।
 राम रीभिजे की जानो भगति न भाउ सो ॥
 करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउं सो ।
 सुपम न सुतन न सुम न सुभाउ सो ॥
 जाँचो जल जाहि बहे अमिय पिबाउ सो ।
 बातों बहीं काहू सों न बढ़त हिभाउ सो ॥
 बाप, बलि जाउं, आप करिये उपाउ सो ।
 तेरेही निहारे परे हारेहू सुदाउ सो ॥
 तेरेही सुभाये सुभे अमुभ सुभाउ सो ।
 तेरेही सुभाये सुभे अमुश सुभाउ सो ॥
 नाम-अवसम्ब-अंबु दीन मोन राज सो ।
 ✓ प्रभु सों बनाइ कहों जोह जरि जाउ सो ॥
 सब माँति विगरी है एक सुबनाउ सो ।
 तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो ॥

चित्त की कंसी निर्मल भाव-दशा तुलसी की इन पंक्तियों में मिलती है । विनयपत्रिका के भाव-अन्धकार की ऐसी उक्तियाँ ही अमूल्य निधियाँ हैं । मन को

सचेत करने के लिए व्यक्त किए गए भावों में से भी अब कुछ बानगी लीजिए ।
तुलसी कहते हैं—

मन पछितै है अवसर बीते ।
कुलंभ बेह पाइ हरिपद भनु, करम, बचन अब ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आवि नृप, धचे न काल घली ते ।
हम हम करि घम-धाम सँवारे, अंत धसे उठि रीते ॥
मुत धनितावि जानि स्वारथरत, न कह नेह सबही ते ।
मतहुँ सोहि तज्यो पामर ! तू न तज्य अयहो ॥ ॥
अब साधाहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु कुरासा जी ते ।
बुझै न काम-अग्नि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु धी ते ॥

अपने आराध्य से कृपा-याचना करते हुए उन्होंने इन पंक्तियों में अपना
हृदय ही खोल कर रख दिया है—

कबहुँ कृपा करि रघुबीर ! मोहूँ चितै हो ।
भसी बुरी जन आपनो जिय जानि इयानिधि ।
अवगुन अमित बितैहो ॥
जन्म-जन्म हों मन जित्यो, अब मोहि जितै हो ।
हों सनाथ हूँहों सही, तुमहुँ अनाथपति,
जो लघुतहि न भितै हो ॥
विनय करौ अवभयहुँ तें तुम्ह परम हितै हो ।
तुलसिदास कासों कहै ? तुमही सब मेरे—
प्रभु गुरु मातु वितै हो ॥

अपनी असहायवस्था का कितनी करुणा के साथ तुलसी ने निम्नांकित
पंक्तियों में चित्रण किया है—

तुम अनि मन भँसो करो, लोचन अनि फेरो ।
पुनहुँ राम सिनु रावरे सोकहुँ परसोकहुँ,
कोउ न करै हित मेरो ॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो ।
स्वारथ ॥ साधिन्हु तज्यो तिजरा को सो टोटक,
औघट उसटि न हेरो ॥

भरतिहोन, बेद-बाहिरों ललित कलमिल घेरो ।
देवनिहूँ, देव ! परिहृयो, अग्याव न तिनको,
हों अपराधी सब केरो ॥

माम की ओट से घेद भरत हों, पं बहावत घेरो ।

× × ×
॥ ! दिनहुँ दिन बे बिपरिहै, बलि जाऊँ,
बिलब किये, अपनाइये सबेरो ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने अपने हृदय की भाव-निधि का समस्त सौन्दर्य उन्मुक्त कर दिया है । बिना किसी प्रकार की हनिमता या आढम्बर के उन्होंने अपने चित्त की निर्मलता एवं सरलता की अभिव्यक्ति की है । यद्यपि इस पुस्तक में हमें मानव-हृदय की विभिन्न दशाओं का चित्रण तो नहीं मिलता, तथापि जिस क्षेत्र की तुलसी ने चूना है, उसमें उन्होंने किसी भाव को छिपाया नहीं । यही उनके भाव-सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता है ।

प्रश्न १६—'विनयपत्रिका' को व्याप प्रहस्य-वाक्य मानते हैं अथवा मुक्तक-वाक्य ? तत्पूर्वक अपने मत का प्रतिपादन कीजिए ।

उत्तर—वाक्य की व्याख्याओं में दो भेदों में विभक्तित्व किया है (१) प्रहस्य-वाक्य, और (२) मुक्तक वाक्य । प्रहस्य-वाक्य के लिए बचावस्तु, नायक और रस की अनिवार्यता घोषित की गई है । बचावस्तु का संगठन घटनाओं में होता है । भावों से भी किसी लघु घटना की लेकर वस्तु-संगठन किया जा सकता है, किन्तु उसमें भाव का अधिक विकास उस लघु घटना की भूमि पर अवस्थित होता है । प्रहस्य-वाक्य की घटना भूमिका, विकास और उपन्यास के चरमों की सुगठित रूप में पार करती हुई जगत् के वाक्य के फल का आस्वाद नायक को कराती है । जगत् प्रहस्य-वाक्य में नायक की अनिवार्यता मानी गई है । नायक ही उसकी बचावस्तु की लेकर चलता है । वह मुख्य घटना में व्यापक मिलने वाली विभिन्न लघु घटनाओं का सुख महानुभूति है । उसका चरित्र भी घटना के साथ-साथ विकसित होता है । घटना और चरित्र मिलकर रस की निरूपित में सहायक होते हैं । जीवन के विविध रूप तथा प्रकृति के विभिन्न चित्र, घटना, चरित्र तथा रस की योजना में सहायक होते हैं । मुक्तक-वाक्य में ये सब बातें स्पष्ट नहीं पा सकती । उसमें भावों, घटनाओं, चरित्र तथा रस की स्पष्ट अभिव्यक्ति

व्यक्ति रहती है। गेयता भी उसकी भाव-योजना का एक विशेष धर्म है। अतः किसी काव्य को मुक्तक या प्रबन्ध की कोटि में रखने का निर्णय उतना विवादास्पद नहीं होना चाहिए, जितना कि प्रायः तार्किकों द्वारा बना दिया जाता है।

‘विनयपत्रिका’ के नाम से प्रकट है कि वह एक प्रार्थना-पत्र है, जिसमें विनय की प्रधानता है। यह पत्र तुलसीदास जी ने भगवान् ‘राम’ को लिखा है। ‘राम’ उनके लिए महाराजाधिराज हैं। पत्र लिखने का कारण तुलसीदास का कलियुग से पीड़ित होना है। राजा के दरबार के समस्त नियमों का पालन करते हुए उन्होंने अपने प्रार्थना-पत्र को राजा ‘राम’ के पास भेजा है। अतः उसी पत्र में उन्होंने उन दरबारी देवताओं की स्तुति की है, जिनके हाथों से होता हुआ वह राम तक पहुँचेगा। फिर अपने उन भावों की अभिव्यक्ति की है जिन्हें वे राम के पास पहुँचाना चाहते हैं। स्पष्ट है कि ‘विनयपत्रिका’ का वह विषय कथावस्तु-विहीन है। हम उसमें न कोई घटना पाते हैं और न नायक के चरित्र का विकास। कुछ आलोचकों ने तुलसी के कलियुग से पीड़ित होने को एक घटना माना है तथा कहा है कि उस घटना को देवताओं से लेकर राम तक सुनाया गया है। घटना के शिकार तथा उसे सुनाने वाले ‘तुलसी’ हैं। यह सुनाने की क्रिया भी उन आलोचकों के मत से एक घटना है। इस प्रकार विनयपत्रिका को उन आलोचकों ने कथावस्तु पर आधारित माना है। उनकी दृष्टि से तुलसी उस कथावस्तु को लेकर चलने वाले हैं, अतः वे ही नायक हैं। घटना के रस के मोक्षता भी उन आलोचकों की दृष्टि में तुलसी ही हैं। प्रारम्भ से अन्त तक समस्त विनयपत्रिका में ‘रस-निष्पत्ति’ के लिए भी सुन्दर भाव-योजना मिलती है। शान्त रस की विशद योजना को ‘विनयपत्रिका’ में पाकर वे प्रबन्ध-काव्य का रस-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी सिद्ध कर देते हैं। मानव-जीवन तथा प्रकृति की भी स्फुट अभिव्यक्ति उसमें मिल ही जाती है। अतः कुछ आलोचकों ने ‘विनयपत्रिका’ को प्रबन्ध-काव्य सिद्ध करने की चेष्टा की है। इस सम्बन्ध में इस मत की आलोचना करते हुए अपने शोष-प्रबन्ध

संस्कृति-साहित्य का प्रभाव मे डा० सरनामसिंह शर्मा

हैं—

विद्वान् विनयपत्रिका को प्रबन्ध-काव्य मान लेते हैं। उनके मत से
 ॥ यथा-क्रम हुई है। वे इसमें एक आवेदन-पत्र (अर्जी) के विषय-

क्रम का अनुमान करते हैं। यह मान्य है कि देव-भूति में क्रम है, किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि यही घटना का भी क्रमिक विकास है। गुण-भूति के अनुकर किसी भी घटना का वहीं भी स्मरण कर लिया गया है। प्रत्येक पद के निरपेक्ष होने से इस रचना की स्फुट पदों का संघट्ट-भाव ही बह गइते हैं। भिन्न-भिन्न पदों में पृथक् पृथक् आसम्भन का होना, उनकी स्फुटता का प्रमाण है। रचना के नायक का नायकत्व सम्बन्ध-रूपना के बल पर है, वस्तु-व्यापार की एकाता के आधार पर नहीं।”

मेरा मत भी डा० शर्मा के मत से मिलता है। मैं यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि विनयपत्रिका एक प्रबन्ध-काव्य है। इस सम्बन्ध में जो कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, वे उक्त आलोचक डा० सरनामसिंह जी के ही शब्दों में पुनः दृष्टव्य हैं—

“विनय की भूमिकाओं में ईश्वर के स्तरो का जो आवर्तन दीख रहा है, उसमें उनमें किसी क्रमिक विकास का रूप नहीं बनता। यदि कलि-काल की शिवायन को एक घटना मान लें और उसी को वस्तु-व्यापार का स्वरूप समझ लें तो तुलसीदास को नायक बनाना पड़ता है। कथावस्तु को लेकर चलने वाला ही तो नायकत्व का अधिकारी होता है। कलि-काल की शिवायन कोई घटना नहीं है, वह तो एक भाव है। भाव के आधार पर भी नायक की रूपना हो सकती है, किन्तु प्रबन्ध-काव्य के नायक की नहीं। प्रबन्ध में भाव के प्रवाह अथवा क्रमिक विकास के बिना नायक की रूपना उचित नहीं है। परिभ्रमण के कारण नायक में गति दीख पड़ती है, किन्तु विकेन्द्रीकरण के कारण स्थिति या भाव में विकास नहीं है। दूसरी बात जो विनयपत्रिका के प्रबन्धत्व का विरोध करती है, वह है—उसकी गीतात्मकता। कुछ पदों की छोड़कर शेषमें प्रारम्भिक पद प्रमुख हैं, विनयपत्रिका के पद सुन्दर गीतों के प्रमाण हैं। मगीन और भाव—दोनों की कसौटी पर पूरे गीत उतर सकते हैं। स्वभावानुमति के प्रकाशन की प्रमुखता और वस्तु-निर्देश के अभाव से इस रचना के बारे में गुण मुक्तक गीत के ही हैं।”

यन्तु आलोचकों के भ्रम का कारण डा० शर्मा के इन शब्दों में निहित है कि “प्रबन्ध की मिट्टि न होने हुए भी कवि-कला में रचना में यह स्थिति और समता निश्चय कर दी है कि उसमें प्रबन्ध का आभास-सा मिलता है।”

किन्तु जब हम यह सचते हैं कि विनयपत्रिका प्रबन्ध-काव्य नहीं है, क्योंकि
 (१) उसमें घटनाओं का अभाव है तथा कथावस्तु का विकास नहीं मिलता
 (२) चरित्रों का अभाव है तथा नायक की योजना नहीं की गई, ए
 (३) उसमें प्रबन्धकाव्यानुसृत वर्णन तथा रस-योजना भी नहीं मिलती, तब
 हमें यह भी देना सेना चाहिए कि यह 'मुक्तक काव्य' ही क्यों है ।

जैसा कि डा० शर्मा के मत में व्यक्त किया गया है, विनयपत्रिका में भाव
 की प्रधानता है और भाव योजना भी क्रमिक विकास के रूप में वस्तु नहीं बन
 सकी है । उसके लिए विभिन्न आलम्बनों की योजना है और विभिन्न रूपों में
 तुलसी उसके आश्रय घने हैं । सदाहरण के लिए गणेश-वन्दना में गणेश और
 तुलसी आलम्बन व आश्रय हैं । मूर्त्ये-वन्दना में मूर्त्ये को आलम्बन बनाया गया
 है । सीता की वन्दना में तुलसी की आश्रयावस्था का वही रूप नहीं है, जो
 गणेश-वन्दना या मूर्त्ये-वन्दना में मिलता है । फिर वही-वही तो तुलसी अपने
 मन को ही समझाने बैठ गए हैं; यथा—

मम पछितै अवसर सोते ।

हुलंभ बेह पाइ हरिपद भनु, करम, बचन अह ही ते ॥

सहसाबाहु दसबदन आदि नय, बचे न काल बली ते ।

हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अगत छते उठि रीते ॥

तुत धनिताहि जानि स्वारपरत, न कह नेह सबही ते ॥

अगतहुँ तोहि तजैने पामर ! तू न तजै अवही ते ॥

अब मायहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु बुरासा ओ ते ।

बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहै, विषय भोग यह घी ते ॥

ऐसे पद स्पष्टतः विनयपत्रिका को मुक्तक काव्य घोषित कर देते हैं । फिर
 जहाँ तुलसी ने भक्ति के भावों में डूबकर भावावेग की एक ही दशा में स्थित
 होकर राम की अनेक पदों में विनय की है या अपनी त्रुटियों का कोप खोला
 है और आत्मगतानि की व्यञ्जना की है, वहाँ तो प्रबन्ध-काव्य का अनुमान भी
 बुद्धि की भूमि तक नहीं आ सकता । हम इस प्रकार के पदों के बृहत् सग्रह
 को प्रबन्ध-काव्य की कोटि में क्या सोचकर रख सकते हैं—

माधव, मो समान जय माहीं ।

सब विधि हीन, मलीन, दोन, अति, सीन-विषय कोउ नाहीं ॥

तुम सम हेतु-रहित कुशलु भारत-हित ईस न रयागो ।
 में दुल-सोक बिकल, वृषासु बेहि कारन क्या न स्यागो ॥
 नाहिन बहुत ओगुन तुम्हार अपराध मोर में माना ।
 ग्यान-भवन तनु दिपहु नाथ, सोड पाय न में प्रभु जाना ॥
 बेनु करील, धोलण्ड बसन्तहि दूवन मूषा लगावे ।
 सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो बहु किमि पावे ॥
 सब प्रकार में कठिन, मनुस हरि, हड़ विचार मिय मोरे ।
 लसतिबाम प्रभु मोह-शूलसा, छूटिहि तुम्हरे धोरे ॥

माथों की स्पृष्टता, कयावस्तु तथा नायक का अभाव और गीतात्मकता का प्राधिक्य, जैसा कि उपर्युक्त दो पदों से स्पष्ट है, विनयपत्रिका की एक मुख्यक-
 वाध्य की ही कोटि में ले आता है । हम उसमें काव्य-कला का यह रूप जो
 एक मुख्यक काव्य के लिए अपेक्षित है, सर्वत्र देखते हैं । अतः हमें यह कहने में
 कोई संकोच नहीं कि 'विनयपत्रिका' एक सुन्दर मुख्यक काव्य है ।

प्रश्न १७—'रस' की दृष्टि से विनयपत्रिका की आलोचना कीजिये ।

उत्तर—'रस' काव्य की आत्मा माना जाता है । काव्य पढ़ने में पाठक का
 प्रमुख उद्देश्य रसास्वादन ही होता है । अतः प्रत्येक कुशल कवि अपनी कविता
 में अभिव्यक्त भावों को रस की दशा तक पहुँचाने की पूर्ण चेष्टा करता है ।
 तुलसी तो रस-सिद्ध कवि थे । अतः उनके काव्य में सभी रसों का स्थानानुकूल
 चरम उत्कर्ष मिलता है । 'विनयपत्रिका' एक साध-प्रधान काव्य है । इसमें
 उन्होंने अपनी भक्ति-भावना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है । अतः भक्ति
 के अनुकूल हृदय की जिस निर्वेद दशा की अपेक्षा होती है, वह विनयपत्रिका में
 पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है । इस दृष्टि से उसमें शान्त रस की प्रधानता
 होना स्वाभाविक है । किन्तु भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के लिए तुलसी ने
 हृदय की अन्य दशाओं का भी चित्रण किया है । फलतः गौण रूप में विनय-
 पत्रिका में शृङ्गार करुण, रोद्र, भयानक आदि रसों को भी स्थान मिल
 गया है ।

यहाँ संक्षेप में उक्त सभी रसों के उदाहरण प्रस्तुत कर विनयपत्रिका में
 तुलसी की रस-व्यञ्जना का स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा की आयगी, यथा—

शान्त रस

यह विनयपत्रिका का प्रधान रस है । 'निर्वेद' दमका स्थायीभाव होता है,

जिसकी तुलसी ने विनय सम्बन्धी पदों में विस्तार से अभिव्यक्ति की है। स्थायीभाव के लिए आसम्बन्ध की सबसे पहले आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके बिना भाव का जागरण असम्भव है। तुलसी ने अनन्त अनादि परमब्रह्म के लीलावतार 'राम' को अपने हृदय के निर्वेद भाव का आसम्बन्ध बनाया है और आश्रय स्वयं बने हैं। ग्लानि, गर्व, दीनता, मोह, हर्ष, अमर्ष, व्याधि, शका, चिन्ता आदि संचारियों से परिपुष्ट होकर तुलसी का 'निर्वेद' स्थायीभाव शान्त रस की निष्पत्ति में सहायक हुआ है। विनयपत्रिका में ऐसे पदों की संख्या सीमित नहीं, जिनमें हमें इस रस की अभिव्यक्ति मिलती है। कुछ उदाहरण देखिए—

✓ लाभ कहा मानुष तनु पाये ।

काय-वचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥
जो सुख सुरपुर नरक मेह बन आवति धिनहि बुलाये ।
तेहि सुख कहें बहु जतन करत मन, समुझत नहि समुझाये ॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोहयस किये मूढ़, मन भाये ।
गरभवास दुसरसि जातना सीख बिपति बिसराये ॥
भय, निद्रा, मधुन, अहार सबके सभान जग जाये ।
सुर-दुरलभ तनु परि न भजे हरि, पद अभिमान गँवाये ॥
गई न निज-पर-बुद्धि, सुख ह्वै रहे न राम-सय लाये ।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि कै पछताये ॥

इस पद में तुलसी के हृदय की निर्वेदावस्था का अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक भव्य चित्रण मिलता है। उनका वह निर्वेद भाव सहज में स्थायित्व नहीं पा गया, अनेक संचारियों ने उसका पोषण किया है। ये संचारी भाव विनयपत्रिका की विभिन्न पक्तियों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं; यथा—

तुलसी कलिकाल को देखकर भयभीत होते हैं—“डरत हों देखि कलिकाल को कहइ ।” इस पंक्ति में ‘शका’ संचारी को स्थान मिला है।

फिर वे ‘विस्ता’ करते हैं—

✓ कतिमस असित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारो ।

वे कारण भी समझ जाते हैं। सोचते हैं कि मुझे मूढ़ मन ने ध्रुमित किया है। अतः उनके हृदय में ‘विपाद’ संचारी को स्थान मिलता है—

✓ मोहि मूढ़ मन बहुत विगोयो ।

याके सिए गुनहु कदनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥

अनः उन्हें 'ग्लानि' भी होती है—

बड़ी ग्लानि हिय हानि है सर्वभ्य गुसाईं ।

कर कुसेवक कहत हों सेवक की नाई ॥

फिर अपनी 'दोनता' दिखाते हैं—

दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन ।

✓ जब लौ लू न बिलोकिहै रघुवरा विभूषन ॥

फिर राम-पद में अनायास उनका मन लग जाता है । तब उनके हृदय में 'गर्व' सचारी भी दिखाई देता है; वे कहते हैं—

तुलसिदास अनयास राम पद पड़है प्रेम पसाउ ।

इस प्रकार विभिन्न संचारियों में जो निर्वेद-भाव तुलसी के हृदय में पुष्ट हुआ है, उसके लिए तीर्थ, देवता आदि उद्दीपन सामग्री के रूप में हमे विनय-पत्रिका में मिल जाते हैं; तुलसी कभी तो कहते हैं—

सेइय सहिन समेह देहभरि, कामधेनु कलि-कासी ।

सब सोच-बिभोचन चित्रकूट ।

कसिहरन, करन कल्याण बूट ।

देवताओं की स्तुतियों से भी तुलसी के हृदय के निर्वेद-भाव को उद्दीपन मिलता है, इसका प्रमाण शिवजी के प्रति लिखी गई निम्नांकित स्तुति है—

बानी बहूँ, संकर-सम नाही ।

दीनबपालु दिबोई भावं, जाचक सदा सोहाहीं ।

तुलसी का निर्वेद-भाव संचारियों एवं उद्दीपनों से परिपक्व होकर विभिन्न अनुभावों के साथ शास्त्ररस की अवस्था को पहुँचा है । अनुभाव के उदाहरणों की विनयपत्रिका में कभी नहीं, यथा—

सजस नयन, गद्गद् गिरा,

गहवर मन पुसक सरीर ।

हास्य रस

विनयपत्रिका में शाल्य रस के अतिरिक्त अन्य रस भी खोजने पर मिल ही जाते हैं । हास्य रस का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण तुलसी का निम्नांकित पद है—

यावरो रावरो माह भवानी ।

✓ दानि बड़ो, दिन देस, दये बिनु देव बड़ाई भानी ॥
 निज घर की बरखात बिसोकहु, हो तुम परम सपानी ।
 सिय की बई सम्पदा देखत, थो-सारदा सिहानी ॥
 जिनके भास लिसो लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
 तिन रंकन को नाक सेंवारत, हों आयो मरुयानी ॥
 बुली-बीमता बुलियन के बुल, जाबकता मरुयानी ।
 यह मयिकार सोंपिये औरहि, भोज भली में जानी ॥
 प्रेम-प्रससा-बिनय-व्यंगजुत, सुनि बिधि की बरयानी ।
 तुलसी मुदित महेस मनहि मन, जगत-मातु मुसकानी ॥

शृंगार रस

ईश्वर-विषयक रति की अभिव्यक्ति का निम्नांकित उदाहरण शृंगार रस की सीमा में आता है—

✓ श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय-दाहन ।
 नवकंज-सोचन, कंजमुख, करकंज, पदकजावन ॥
 कंवर्प-भगनित-अमित छवि, नवनील नीरव सुन्दर ।
 पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुधि, मोमि जनक-सुतावर ।
 भजु बीनबन्धु बिनेश दानव-वैश्य-वस, निकंदन ।
 रघुनन्द आनन्दकन्द कौसलचन्द बसरय-नन्दन ॥
 सिर मुकुट, कृण्डल तिलक चार, उदार अंग विभूषन ।
 आजानुभुज, सर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषन ॥
 इति षडति तुलसीदास सकर-सेय-मुनि-मन-रजन ।
 मम हृदय-कंज निवास कर, कामादि-खल-दल-गंजन ॥

रस

विनयपत्रिका में करुण रस की स्फुट रूप में कई पदों में अभिव्यक्ति मिलती एक उदाहरण लीजिए—

पाहि-पाहि राम ! पाहि, रामभद्र रामचन्द्र,
 गुजस खवन सुनि आयो हों सरन ।
 बीनबन्धु ! बीनता-दरिद्र-बाह-दोष-दुख,
 दास - दसद - दर - दस - दस ॥

तथा—

✓ वही जाड़े, फासों वही, कौन सुन दीन की ।
त्रिभुवन तू ही गति सब अगहीन की ॥

भयानक रस

दूँवने पर दिनयपत्रिका में भयानक रस की पंक्तियाँ मिस ही जाती हैं; यथा—

पन करि ॥ हठि आलु तें रामझार परो ॥

×

×

×

दे हैं घबका जमघट बने, टारे न टर्प्यो हों ।
उदरे दुसह साँसति सहो बहु बार जनमि—
जग, मरक निबरि निबर्प्यो हों ।
हों मलका मं छीड़्यो जेहि लागि मर्प्यो हों ।

वीर रस

वीर रस के भी उदाहरण दिनयपत्रिका में मिलते हैं ।

यथा—

जयति जय सत्रु-करि-बेसरी सत्रुहन,
सत्रुतम सुहिनहार - किरमवेनु ।

×

×

×

बर्म - बर्माति - वनु-बान - तुनीर-घर,
सत्रु-सकट-समन वात्स्रपापी ।
जयति सवनाम्बु निधि-सुख-समय महा-
दनुज - दुर्जन - दधन कुरिहारी ।

तथा—

साहि है समकि साची ओर को ।
जायो है सब भाति अरोसो करि बेसरी बिसोर को ॥
जन-रजन अरिजन-मंजन कुल-मंजन सस बरजोर को ।
बेद पुरान घट दुरपारथ सरस मुमट-निरपोर को ॥
उपदे-अपन, बने उपपन बन, त्रिबुधद्वन्द्व बनि दोर को ।
जसहि साँधि बहि संक दहन दम दहन निमाचर घोर को ॥

जाकी बामविमोह समुभिः त्रिषु वरत दिवाकर भोर को ।
जाकी धिपुत्र घोट चुरन हिय रह-मइ कठोर को ॥
सोरपात्र अनुपम बिसोबिबो चहत बिसोवन कोर को ।
तारा भभय, जय मुदमंगतमय जो सेवक रनरोर को ॥

रोद्र रस

घट-भुज दण्ड सण्डनि विहंडनि महवि,
भुंड भव भग कर भग तोरे ।
भुम निगुभ बंभीश रण-नेसरिनि,
बीध-वारीश भीर वृन्द बोरे ॥

जहाँ बीर रस के कई उदाहरण विनयपत्रिका में मिलते हैं, वहाँ रोद्र रस की भी उसमें कमी नहीं पाई जाती । कुछ पंक्तियाँ देता हूँ—

इस प्रकार हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि तुलसी की विनयपत्रिका में प्रधान रस 'शान्त रस' है तथा अन्य रसों की भी उसमें उपेक्षा नहीं की गई है । बूढ़ने पर हमें उसमें शृंगार, वीर, करुण, हास्य, भयानक, रोद्र आदि भी स्फुट उदाहरण मिल जाते हैं ।

प्रश्न १८—“विनयपत्रिका में कवि पूर्णतः प्रकृति-चित्रण को उपेक्षा नहीं कर सका ।” इस कथन की सार्थकता पर सोदाहरण विचार कीजिये ।

उत्तर—प्रकृति का सम्पर्क मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हो जाता है । कोई भी मनुष्य उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता । जीव-मृष्टि का विकास पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है । काव्य में भी जीवन का एक अंग बनकर प्रकृति अपने लिए स्थान बनाती है । कोई भी कवि चिह्ना करने पर भी उसकी अभिव्यक्ति से अपनी काव्य-कृति को नहीं बना सकता । विनयपत्रिका के विषय-क्षेत्र में प्रकृति के चित्रण के लिए यद्यपि अधिक स्थान नहीं है, तथापि तुलसीदास उसकी पूर्णतः उपेक्षा नहीं कर सकते हैं ।

काव्य में प्रकृति-चित्रण के जिन प्रमुख रूपों का विकास अब तक हुआ है, उनमें निम्नांकित की विशेष महत्ता है—

(१) आत्मचित्रण रूप में प्रकृति-चित्रण—इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति को स्वतन्त्र रूप में चित्रित किया जाता है । इसके भी चार उपभेद हैं—

- अ—विश्व-ग्रहण के रूप में,
- ब—नाम-परिगणन के रूप में,

स—ध्यायावादी रूप में; तथा

द—मानवीकरण के रूप में ।

(२) उदीपन रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(३) प्रतीक रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(४) अलंकार-योजना के लिए प्रकृति-चित्रण ।

(५) रहस्यात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(६) वातावरण-सृष्टि के रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(७) संबेदनारमक प्रकृति-चित्रण ।

(८) उपदेशात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण ।

(९) दूरी या दूत के रूप में प्रकृति-चित्रण ।

विनम्रपत्रिका में इन सभी रूपों में प्रकृति-चित्रण नहीं मिलता । केवल निम्नांकित रूपों में ही यह उपलब्ध है—

१—आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण

विनम्रपत्रिका में तुलसी की वस्तुना एवं अनुभूति को क्या का बन्धन न होने के कारण विशेष स्वतन्त्रता मिली है । अतः वे इस काव्य में कतिपय स्थानों पर प्रकृति का आलम्बन रूप में भी चित्रण करने में समर्थ हुए हैं । ध्यायावादी और मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण की पद्धतियों का आधुनिक काव्य में प्रचलन हुआ । अतः उनमें तो तुलसी परिचित नहीं थे, किन्तु दो प्रकार से आलम्बन के अन्तर्गत उन्होंने प्रकृति को चित्रित किया है, कुछ उदाहरण देखिए—

(क) सुवि भवनि मुहावनि आलनाल ।

काजनि बिबिज आरी बिसाल ॥

मगडाबिनि-आलिनि सदा सीध ।

बर-बारि, विषय नर बारि नीध ॥

साता सुमृंग, मूरह गुपात ।

निरभर मधुवर मृदुमलय धान ॥

मुक, विक, मधुवर, मुनिवर बिहाद ।

सायन प्रमून, पल बारि पाद ॥

भब-धोरपाय हर मुसद छाँह × ×

× × सेहम गिरि करि निरपावि नेम ॥

इस चित्रण में यद्यपि आत्मकारिकता भी है और चित्रकट के भक्ति-परक महारन की स्थापना की ओर भी कवि का ध्यान है, तथापि उसके प्राकृतिक रूप को कवि ने आत्मम्बन रूप में ही ग्रहण किया है, यह मानना भी अनुचित नहीं—

(स) गल-कंदल बरना बभाति जनु,
मूम सतित सरिता-सी ॥
× × ×
मनिकार्णिका बदन-सति सुन्दर ।
सुरसरि-सुल सुतमा-सी ॥

तथा—

जमुना क्यों क्यों लागी बाढ़न ।
र्यों र्यों गुरुत-सुभट कलि-भूषहि, निदरि लगे बहू काढ़न ॥
क्यों जल मसीन र्यों र्यों जम-गन मुल मसीन सहै बाढ़न ।
सुलसिदास जगदघ क्यों अनघमेघ लगे बाढ़न ॥

इन पंक्तियों में भी आत्मकारिकता के साथ नदियों का चित्रण आत्मम्बन रूप में ही किया गया है ।

(ग) गंगा का यह स्वतन्त्र चित्रण भी ध्यान देने योग्य है—

विमल विपुल बहसि बारि, सीतल प्रयताप हार,
भँवर बर विभगतर तरंग-तालिका ।
पुरजन पूजोपहार, सोभित सति यबलघार,
भजन-भव-भार, भक्ति-कल्पपालिका ।
तिज तटधासी बिहंग, जल-यल-धर पंसु-पतंग,
कोट, जटिस तापस सब सरिस पालिका ।

२—अलंकार-योजना के लिए प्रकृति-चित्रण

ने दिनपत्रिका में प्रतीक तथा रहस्यात्मक रूपों में भी प्रकृति-किया, किन्तु अलंकार-योजना के लिए तो उन्होंने बार-बार एक रूप में प्रकृति को प्रस्तुत किया है । वसन्त की बहार का यह एक चित्रण शिव-शरीर की प्रधान वर्णना के साथ कैसा सुन्दर लग

देखो देखो, बन बन्यो आजु उमाकंत ।
 मनो देखत तुमहि आईं श्रुतु बसत ॥
 जनु तनु दुति चंपक-कुसुम भास ।
 हर बसन नील नूतन समास ॥
 कल कदलि अंध, पद कमल लाल ।
 मूर्च्छति बटि केहरि, गति भरास ॥
 भूषन प्रभुन बहु बिबिध रंग ।
 मृगुर निकिन कलरव बिहंग ॥
 कर नवल-बहुल, पल्लव रसास ।
 धौकल पुष्प, कङ्किक लता-कास ॥
 आनन सरोज, कच मधुप पुञ्ज ।
 सोवन बिसाल नव-मोल बंज ॥
 पिक बचन खरित कर करहि कीर ।
 सित मुमन हास लीला समीर ॥

राम कहत चतु, राम कहत चतु, राम कहत चतु भाई रे ।
 नहि नव बेगारि मई परिही छूटत अति कठिनाई रे ॥
 बीस पुरान साज सब अटलट, सरम तिकोन राटोला रे ।
 हमहि विहस बरि कूटिम करमचद मन्व भोसबिनु डोला रे ॥
 विषम बहार मार मदमाते चलाहि न पाव खटोरा रे ।
 मन्द बिसन्द अमेरा बसकन पाइय दुख भवभोरा रे ॥
 बाट कुराय सपेटन सोटन ठाँवहि ठाऊँ बसाऊँ रे ।
 जस-जस बसिब दूर तस-तस निज बीस न भेंट लगाऊँ रे ॥
 मारग अगम, संग नहि सबन, नाऊँ गाऊँ कर भूसा रे ।
 तुलसिदाम भव-नास हरहु भव, होहु राम अनुकूला रे ॥

विनयपत्रिका में तुलसी ने बुन्देलखण्डी के शब्दों का ज्ञान भी अनेक पदों में प्रकट किया है। पनवार, छेरे आदि शब्द बुन्देलखण्डी के हैं, जिन्हें उन्होंने प्रयुक्त किया है। यही तक नहीं, उर्दू-फारसी के शब्दों का भी विनयपत्रिका में प्रयोग मिल जाता है, जिससे तुलसी के शब्द-ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई है। निसानी, मदम, इयाल, बिसन्द, मिसकीनता आदि फारसी-शब्द तथा दिरमानी, फहम, सौदा, निबाज आदि अरबी-शब्द इस सम्बन्ध में प्रष्ट प्रमाण हैं।

वाक्य-पटुता

केवल शब्द ज्ञान ही अद्भुत नहीं, तुलसी की वाक्य-योजना में भी पर्याप्त पटुता का प्रमाण मिलता है। उन्होंने वाक्यों का गठन तथा प्रयोग भावों के अनुकूल किया है। विनयपत्रिका में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जिनसे उनकी पूर्ण वाक्य-पटुता सिद्ध होती है; कुछ उदाहरण देखिए—

(क) ✓ कहाँ जाऊँ कासों बहो, बीन सुये बीन की ।
 त्रिभुवन तुही गति सब अग-हीन की ॥
 जग जगदोस घर घरनि घनेरे हूँ ।
 निराधार के आधार गुन-गन तेरे हैं ॥

(ख) कबहुँक अम्य अवसर पाइ ।
 मेरिभी सुधि छाइबो कछु करुन-कथा बलाइ ॥

निरसन्देह तुलसी वाक्य-प्रयोग में बड़े पटु हैं। उनकी भाषा को उनकी वाक्यावली की इस पटुता ने भी पर्याप्त सौन्दर्य प्रदान किया है।

धारि भुज धक्क-कौमोदको-जलज-वर,
सरसिओपरि यथा राजहंस ।

विनयपत्रिका में प्रकृति-चित्रण के ये रूप ही प्रधान हैं । अन्य कतिपय रूपों में भी यत्र-तत्र स्फुट चित्रण मिल जाता है; यथा—संवेदनात्मकता तथा वातावरण मृष्टि के रूप में भी उन्होंने प्रकृति-चित्रण किया है । उपदेशात्मकता को तो भक्तिमार्गी कोई भी कवि नहीं छोड़ सका । स्फुट पक्तियों में तुलसी ने भी अपनी यह प्रवृत्ति दिखा दी है; कहीं तो वे कहते हैं—

उद्यो कवली-लह-मध्य निहारत,
कबहुं न निकसत सार ।

और कभी कहते हैं—

पायक-काम भोग-घृत से सठ कैसे परत बुझायो ।

दूत-दूती रूप में किए जाने वाले प्रकृति-चित्रण का आभास हम वहाँ पा सकते हैं, जहाँ तुलसी पवित्र जल वाली निर्मल-हृदया यगा से, राम तक अपनी भक्ति का सन्देश पहुँचाने तथा उनकी कृपा-दृष्टि पाने के लिए दूती का काम लेते हैं—

सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में प्रकृति-चित्रण की पूर्णतः उपेक्षा नहीं होने दी । उसमें भक्ति की प्रधानता होते हुए भी प्रकृति-चित्रण को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है ।

प्रश्न १६—“विनयपत्रिका की भाषा में तुलसी जी शब्द-ज्ञान, वाच्य-पटुता, अर्थ-गौरव, उक्ति-संक्षिप्त एवं लोक-जीवन के आधार पर कहावत तथा मुहावरों के प्रयोग की कुशलता का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है ।” उपयुक्त उद्धरण देकर कमेंट का औचित्य सिद्ध कीजिए ।

उत्तर—तुलसी के काव्य में भाव और भाषा का पूर्ण सामन्वय मिलता है । वे विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने में पूर्ण दक्ष हैं । ‘श्रीरामचरित-मानस’ को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो भाषा उनके भावों का अनुसरण कर रही है । उनकी गीतावली आदि कृतियों में रस और गुण के अनुरूप बड़ी ही प्रभावपूर्ण भाषा का प्रयोग मिलता है । विनयपत्रिका में हमें उनकी भाषा का सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है । इस काव्य में उन्होंने भक्ति और विनय के अनुकूल सरल एवं विलम्ब समी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया

है। हमे उनका भाषाधिकार देखकर सचमुच विनयपत्रिका पढ़ते समय आश्चर्य होने लगता है। 'श्रीरामचरितमानस' में हम उनकी अवधी का अत्यन्त भव्य रूप देख चुके हैं। 'विनयपत्रिका' में हमे उनकी राजभाषा का वह रूप देखने को मिलता है, जो संस्कृत-शब्दावली से पर्याप्त प्रभावित है। भाषा पर उनके एकाधिकार का एक प्रमाण यह है कि उन्होंने शब्द-ज्ञान, यावय-पटुता, अर्थ-शोरव, उक्ति-वैचित्र्य तथा कहावतों-मुहावरों के प्रयोग की कुशलता का अद्भुत परिचय दिया है।

यहाँ हम सक्षेप में इन क्षेत्रों में तुलसी की भाषा का सौन्दर्य परतने की चेष्टा करेंगे; यथा—

शब्द-ज्ञान

तुलसी ने विनयपत्रिका में सदभव और तत्सम—दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। शब्दों का रूप वहीं-वही पूर्णतः सज्ज का है और वहीं-वही संस्कृत ध्यावरण से अनुज्ञासित है। इससे तुलसी का शब्द-ज्ञान प्रकट होता है। वे जनता की भाषा को भी उसी अधिकार से समझने तथा वाक्य में स्थान दे सकते थे, जितने अधिकार के साथ वे संस्कृत-शब्दावली का प्रयोग कर सकते थे। भाषाभूषण शब्दों का चयन करने में उन्हें बटिनाई नहीं होनी थी। इसका कारण यही था कि उनका शब्द-ज्ञान अद्भुत था। अब इस सम्बन्ध से कुछ प्रमाण भी लीजिए। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी तत्सम-शब्दावली के ज्ञान की परिमा अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट हो रही है—

✓ श्रीरामचन्द्र कृपानु भक्तु मन हरन भवभय दारन ।

नदवज्र-लोचन, वज्र-मुख, वर-वज्र, वर-वज्रासनं ॥

बहर्ष-अगणित-अमित दधि, नवनील गौरव सुन्दर ।

पटपीत मानहु लङ्घन रवि कुकि गौरि जनक-मुतावर ॥

इन पंक्तियों में राम के वर का अति-साधना के साथ सुन्दर विष अङ्गित कर करने में तुलसी की भाषा पूर्णतः समर्थ है। प्रत्येक शब्द तुलसी के शब्द-ज्ञान की महारत का प्रतिपादक है। यह तो वही लम्बे लम्बे शब्दावली-मुक्त भाषा का प्रयोग; अब उनके तत्सम शब्दावली-मुक्त भाषा-प्रयोग का भी एक उदाहरण देलें—

जननि दृष्टिबानि मैं बिलारे हो कृपाविचार ।

एनो मान होइ हो उन्नि होउ कोरि हो ॥

करत जतन जासों जोरिये को जोगीजन ।

सासों बघोंहूँ जुरी, सो अभागो बंठी तोरि हों ॥

मोसो दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न ।

आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हो ॥

गाड़ी के स्थान को नाई, माया मोह को बड़ाई ।

छिनहिं तजत, छिन भजत, बहोरि हों ॥

इन दोनों उदाहरणों में तुलसी का शब्द-ज्ञान प्रष्ट होता है । ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने विनयपत्रिका में शब्दों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति में पहले से कुछ परिष्कार कर दिया है । संस्कृत के शब्दों का रूप कहीं भी स्वयं विकृत नहीं किया । साहित्य में या समाज में जो शब्द जिस रूप में चलता हुआ उन्हें मिला है, उसी रूप में उन्होंने उसे ग्रहण किया है । वे शास्त्रीय शब्दावली से भी पूर्णतः परिचित हैं । दार्शनिक भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का उन्होंने पूर्णतः अनुकूल स्थानों पर प्रयोग किया है । इस सम्बन्ध में भी एक उदाहरण देना अनावश्यक न होगा; तुलसी कहते हैं—

प्रकृति महत्तत्त्व, शब्दादि, गुण-देवता,

ध्योम, महद्गति अमलांबु उर्वी

बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, चित्तातमा,

काल, परमानु चिच्छक्ति गुर्वी ।

सर्वमेमात्र-स्वप्न भूपाल-मनि,

व्यक्त भव्यक्त गतभेद विष्णो ।

भुवन भवदग कामारि-बंदति पदद्वय,

मंदाकिन - जनक - जिष्णो ।

तथा—

अनघ अर्द्धत, अनवद्य अस्यक्त, अज,

अमित अविकार आनन्द सिन्धो ।

दास तुलसी खेद-लिप्त, आपन्न इह,

सोक सम्पन्न अतिसय सभीत ।

तुलसी के शब्द-ज्ञान की विशदता का एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने मधो, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि के शब्दों का भी प्रयोग किया है; 'भोज-पुरी' के प्रयोगों का एक उदाहरण देखिए—

राम कहत चतु, राम कहत चतु, राम कहत चतु भाई रे ।
 — नाहिन मय बेगारि महँ परिहो छूटत अति कठिनाई रे ॥
 वाँस पुरान माज सब अटसट, सरन तिकोन खटोला रे ।
 ह्महि विहल करि कूटिस करमचद मन्ध भोसबिनु डोला रे ॥
 विषम कहार मार मदमाते चसहि न पाँव बटोरा रे ।
 मन्द बितन्द अमेरा दलकन पाइव दुख भवभोरा रे ॥
 काँट कुराय लपेटन सोटन ठाँवहि ठाऊँ बसाऊ रे ।
 जम-जम बलिय दूर तस-तम निज बाँस न भेंट लगाऊ रे ॥
 मारग अगम, संग नहि सबल, नाऊँ पाऊँ कर भूला रे ।
 तुलसिदाम भव-प्राप्त हरहु अव, होहु राम अनुकूला रे ॥

विनयपत्रिका में तुलसी ने कुन्देलखण्डी के शब्दों का ज्ञान भी अनेक पदों में प्रकट किया है। पनवार, सेरे आदि शब्द कुन्देलखण्डी के हैं, जिन्हें उन्होंने प्रयुक्त किया है। यही तक नहीं, उर्दू-फारसी के शब्दों का भी विनयपत्रिका में प्रयोग मिल जाता है, जिससे तुलसी के शब्द ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई है। निसानी, मदम, क्याल, बितन्द, मिसकीनता आदि फारसी-शब्द तथा दिरमानी, फहम, मोडा, निबाज आदि अरबी-शब्द इस सम्बन्ध में यथेष्ट प्रमाण हैं।

वाक्य-पटुता

केवल शब्द ज्ञान ही अद्भुत नहीं, तुलसी की वाक्य-योजना में भी पर्याप्त पटुता का प्रमाण मिलता है। उन्होंने वाक्यों का गठन तथा प्रयोग भावों के अनुकूल किया है। विनयपत्रिका में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जिनसे उनकी पूर्ण वाक्य-पटुता सिद्ध होती है; कुछ उदाहरण देखिए—

- (क) ✓ कहाँ जाऊँ कासों वही, कीन सुन दीन की ।
 त्रिभुवन तुही गति सब जग-हीन की ॥
 जग जगदीस घर बरनि घनेरे हैं ।
 निराधार के आधार गुन-गन तेरे हैं ॥
- (ख) कष्टक अम्ब अवसर पाइ ।

मेरिभी सुधि छाइबो कछु कछन-कया बसाइ ॥

निस्सन्देह तुलसी वाक्य-प्रयोग में बड़े पटु हैं। उनकी भाषा की उनकी वाक्यपारंगता की इस पटुता ने भी पर्याप्त सौन्दर्य प्रदान किया है।

अर्थ-गौरव

विनयपत्रिका की भाषा में अर्थ-गौरव भी पर्याप्त महत्ता रखता है। व्याकरण-शब्दावली का प्रयोग तुलसी ने कहीं भी नहीं किया। उनकी भाव-व्यञ्जना में भाषा पूर्ण सहायक हुई है। समस्त विनयपत्रिका की भाषा अर्थ-गामीय के उदाहरणों से भरी पड़ी है। शब्दों का प्रयोग उतना महत्व नहीं रखता है, जितना महत्त्व उस प्रयोग द्वारा शब्दावली तथा वाक्यावली को अर्थ-गौरव प्रदान करने का है। निम्नांकित पंक्तियों में हम उसी अर्थ-गौरव का प्रदर्शन करते हैं—

केशव कहि न जाइ का कहिये ।

✓ देखत सब रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ॥
सूख्य भीति पर चित्र, रग नहि, तनु बिनु लिखा चितैरे ।
घोये भिटइ न, मरइ भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
रधिकर नौर बसै अति शदन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सो प्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।
कोउ कह सत्य, भूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

उक्त-वैचित्र्य

तुलसी की भाषा में उक्ति की सरलता तथा सुबोधता जिस मात्रा में मिलती है, उसी मात्रा में उन्होंने उक्ति-वैचित्र्य को भी उसमें स्थान दिया है। विनय के अनेक पदों में उनकी भावुकता अपना बाँध तोड़कर वैचित्र्य की सीमा में प्रवेश कर गई है, कुछ उदाहरण देखिए—

✓ बावरो रावरो नाह भवानो ।

दानि छड़ो दिन वेत दए बिनु वेद अड़ाई भानो ॥
निज घर की बरधात बितोकहु, हो सुम परम सपानो ।
सिय की बई सम्पदा देखत, थी सारवा सिहानो ॥
जिनके भाल लिखो लिखि मेरो, सुख की नहीं निसानो ।
तिन रंकन को नाक सँवारत, हों जायो नकवानो ॥
दुखी दीनता दुखिइन के दुख, जाधकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौपिये औरहि, भोख भली में जानी ॥

बहावत तथा मुहावरों का प्रयोग

विनयपत्रिका की भाषा की एक विशेषता यह है कि तुलसी ने लोक जीवन-रत अनेक बहावत तथा मुहावरों का सुन्दर प्रयोग कर उसकी भाव व्यक्त करने की शक्ति को पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दिया है। निम्नांकित उदाहरण इस कथन की सत्यता के पर्याप्त प्रमाण हैं—

- (क) हों भायों नवबानी ।
- (ख) तू पछिनेहै मनमोजि हाथ ।
- (ग) छँ हों माखी घी की ।
- (घ) तू हिये की आखनि हेरि ।
- (ङ) गोप बूढ़िबो जोग करम करों, बातनि असधि बहावों ।
- (च) गाँठी बाँध्यो दाम न परख्यो ।
- (छ) सावन के अर्घहि ज्यों सुसत रंग हरो ।
- (ज) अपने न जमाइ ।
- (झ) दुप को जरुसो पियन पूँक-पूँक मझो ।

इन मुहावरों का अर्थ लोच-जीवन से हुआ है, इसमें सन्देह नहीं तथा प्रयोग में भी पर्याप्त स्वाभाविकता का दर्शन होता है।

अतः मैं हम यही कह सकते हैं कि 'विनयपत्रिका' में तुलसी की भाषा—शास्त्र-बदल, अर्थ-मासीय, वाक्य-रचना, उक्ति-वैविध्य तथा बहावत व मुहावरों के प्रयोग आदि की दृष्टि से उनकी वाच्य-शक्ति को उत्कृष्टता प्रदान करने में पर्याप्त सहायक हुई है। हमें उनमें उनके भाषा-प्राणित्य का सर्वत्र दर्शन होता है।

अन २०—'विनयपत्रिका' की अलंकार-शोभना पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—'अलंकार' वाच्य का अन्तःस्थित सत्त्व है। भाषा की सुन्दर रूप से व्यवहार करने के लिए तथा भाषा में सौन्दर्य लाने के लिए अलंकार-शोभना अत्यन्त होती है। विनयपत्रिका में तुलसी ने भी अपने भाषा और उनकी अभिव्यक्ति को सुन्दर रूप देने के लिए अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया है। अलंकार के अन्तर्गत एक अलंकार—दोनों ही अंशों को उनके वाच्य में महत्त्वपूर्ण रखार दिया है। दोनों पर समान अलंकार प्रयोज्य होता है। विशेषता यह

है कि कहीं भी तुलसी ने असंकारों का प्रयोग भावों को गीण बनाकर नहीं किया। सर्वत्र उनकी भाव-व्यंजना के साथ सहज रूप में जो असंकार आ गए हैं, उन्हीं से उन्होंने काम चलाया है। कुछ असंकारों पर उनका असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। शब्दासंकार की तो विनयपत्रिका में इतनी बहुलता है कि कहीं से भी कोई भी पंक्ति उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है। यहाँ हम शब्दासंकार और अर्थासंकार—दोनों की समीक्षा करके विनयपत्रिका की असंकार-योजना को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे; यथा—

शब्दासंकार

तुलसी ने विनयपत्रिका में अनुप्रास शब्दासंकार अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया है। छेकानुप्रास, पृथगनुप्रास तथा साटानुप्रास के अनेक उदाहरण विनय-पत्रिका में भरे पड़े हैं; कुछ उदाहरण देखिए—

(क) कुलित कुण्ड कुडमल, दामिनि-दूत वसनन बेति लज्जाई ।

नासा नयन कपोल ललित धृति कुण्डल धू मोहि भाई ।

कुंचित कक्ष तिर मुकुट भाल पर तिलक कहीं समुझाई ।

×

×

×

सत सारवा सेष धृति मितिके शोभा कहि न सिराई ।

इन पंक्तियों में गहरा काला अंग अनुप्रास की छटा छिटका रहा है।

(ख) दीनबन्धु दीनता दारिद्र-दीह दोष-नुस,

बारुन-बुसह - बर - बरप हरन ।

इन पंक्तियों में 'द' वर्ण की आवृत्ति दर्शनीय है।

(ग) मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि,

कीटिहु जतन न जाई ।

जनम जनम अभ्यास-निरत चित,

अधिक अधिक लपटाई ।

नयन मलिन पर नारि निरखि,

मन मलिन विषय संग लागे ।

हृदय मलिन वासना - मान - मद,

जीव सहज मुस त्यागे ।

इन पंक्तियों में गहरे काले शब्दों में साटानुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

अर्थालंकार

तुलसी ने साधर्म्यमूलक तथा विरोधमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग उन्होंने पूर्णतः स्वाभाविक रूप में किया है। वहीं भी उनकी भाव-व्यञ्जना या भाषा पर उनकी अलंकार-योजना का कुप्रभाव नहीं पड़ा है।

यहाँ संक्षेप में हम कतिपय उदाहरण देकर उनके अर्थालंकारों का सौन्दर्य व्यक्त करने की चेष्टा करेंगे।

सबसे पहले उपमास्वरूप के कतिपय उदाहरण लीजिए—

(अ) स्वारथ के साधिन्ह लग्यो तिजरा को सो।

टोटक औबट उमटि न हेरो।

(ब) सर कोटर में बस बिहंग सर काटे मरे न जैसे।

(स) राम कबहुँ प्रिय सागि हौ, जैसे मीर मीन को।

(द) धूम्राँ जैसे घोरहर देखि तू न भूलि रे।

रूपभासकार के भी कई सुन्दर उदाहरण मिलते हैं; यथा—

(क) सुधि अर्वाणि सुहावनि आस-बास।

कानन विविध बारी बिसाल।

बर बारि विषम नर नारि मोक्ष।

(ल) धौहरि, गुह-पद कमल भजहु मन तजि अभिमान।

(ग) बाँस पुरान साज सब अटलट सरस तिकोन लटोला रे।

×

×

×

विषम बहार मार-भदमाते चलहि न पाँव बहोरा रे।

उल्लेख अलंकार का प्रयोग तुलसी ने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

जेहि कर-कमल बठोर सम्भु धनु भजि जनक-संसय भेट्यो।

जेहि कर-कमल उठाइ बन्धु क्यो परम प्रीति केवट भेट्यो ॥

जेहि कर-कमल कृपासु गोप बहै विषय देह निज घाम दियो।

जेहि कर-कमल बिबारि बास हित, कवि कुसवति सुपीव दियो ॥

आयो सरन समीत विभीषन, जेहि कर-कमल नितक कीन्हो।

जेहि कर गहि सर चाप असुर हित अमय दान देवहु कीन्हो ॥

हृदय धर्मकार के कई गुहर उदाहरण विमलनिहा में मिलने हैं।
 इस धर्मकार की जाति के अन्य धर्मकार हैं— उदाहरण, प्रतिष्ठापना एवं
 धर्मगिर्याग। गुहरी में इन पाशों की धर्मकारों का उद्देश तथा उद्देश्य
 के लिए स्थान स्थान पर प्रयोग किया है। उदाहरण, हृदय और धर्मगिर्या-
 ग के लिए उदाहरण यही प्रयोग किए जाते हैं—

(१) मेरी मन हरि हृद न तजें ।

निज दिन माय बेहू तित बहु बिधि करत मुझाय निजें ।
 क्यों चुपची अनुभवति प्रसव अति बादन पुन उपजें ।
 छँ अनुसृत बिचारि गुन साठ पुनि लग पतिहि भजें ।
 सोनुन भ्रमनत गृह पनु क्यों सहें सहें तिर पवत्रान बजें ।

(२) ऐसी मूर्खता या मन की ।

परिहरि रामभगति गुर सरिता आस करत ओस बन की ॥
 घूम समूह निरति घातक क्यों सुविन जानि मति घन की ।
 नहि सहें सीतलता न धारि पुनि हानि होत सोघन की ॥

(३) मायव, मोह कांत क्यों दूई ।

बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यन्तर प्रिय न छूटै ॥
 घृत घूरन कराह अन्तरगत शक्ति प्रतिविम्ब दिखावै ।
 ईंधन अनस लगाइ कतप सत ओटत नास न पावै ॥
 तब कोटर महँ बस बिहंग तब काटे भरै न जैते ।
 साधन करिय विचार-हीन, मन सुख होइ नहि तैते ॥

(४) जैसी हूँ तैसी हूँ राम राखरो जन अनि परिहरिये ।

छपा सिम्पु कोसल धनी सरनागत पालक
 दरिन आपनो दरिये ।

×

×

×

जग हँसि है मेरे संग्रहे कत एहि डर दरिए ?

कपि केपट कोन्हे सदा जेहि सोस सरल चित

तेहि सुझाय अनुसरिए ।

दूटियो बाँह गरे परे, फूटेहूँ बिलोचन

परि होत हित करिए ।

भ्रान्तिमान अलंकार “छायो जेबरी को साँप रे” जैसी पक्तियों में मिल जाता है। “तुव पद-विमुख न पार पाठ कोठ” कहकर उन्होंने तुल्ययोगिता की योजना की है। प्रतीप अलंकार के उदाहरण में निम्नांकित पंक्तिमा प्रस्तुत की जा सकती हैं—

विसद, किसोर, पीन, सुन्दर, बधु, त्याग सुखि अधिकारी ।

नीलकंज बारिद तमाल मनि इन्ह तनु ते दुति पाई ॥

उत्प्रेक्षा अलंकार का भी एक सुन्दर उदाहरण लीजिए—

धृदुस धरन सुभ चिन्ह पदज नरक अति अवभुत उपमाई ।

अरन नील पापोज-प्रसव जनु मनि जुत दल-समुदाई ॥

जात-रूप मनि जदित मनोहर नूपुर जन-सुखदाई ।

जनु हर-उर हरि बिधि रूप धरि रहे बन भवन बनाई ॥

कटि तट रटति छाह किकिन रव अनुपम धरन न जाई ।

हेम जलज-जल कसित मध्य जनु मधुकर मुखर सुहाई ॥

गज-मनिमाल घोष भ्राजत कहि जाति न परक निकाई ।

जनु उहुगन-मण्डल बारिद पर, मय-ग्रह रची भयाई ॥

इन प्रमुख अलंकारों के अतिरिक्त विनयपरिका में अन्य अलंकारों के उदाहरण भी पर्याप्त रूप में मिलते हैं; यथा—

(क) संवेह संकर—निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय त समायी ।

बहु मनिजुत निरि-नील-सितर पर कनक यतन बधिराई ।

(ख) विभावना—शून्य भीत पर बिन्न रंग नहि,
तनु धिनु तित्ता चितेरे ।

× × ×

रवि कर नीर दस अति दादन,

महर रूप तेहि माही ।

यदन होन सो प्रसं धराधर,

पान करन जे जाही ।

(ग) प्रायनीक—रामराज न धले मानस मतिन के दल दाम ।

बोन तेहि बलिबाल क.पर मुएहि घालन घाम ॥

सेत बेहरि जो धरन ज्यों भेरु हरि गोमाय ।

त्योहि राम गुलाम जानि निकाम देत बुदाय ॥

(घ) घपसातिशयोक्ति—सेरो नाम सेत हो सुयेत होत ऊसरो ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विनयपत्रिका में तुलसीदास ने विभिन्न शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। उनकी भाव-व्यंजना में अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से जो चमत्कार पैदा हो गया है, वह वस्तुतः उन जैसे महाकाव्य को ही प्रतिभा का काम है। विषय को बोध-गम्य बनाने में उनकी अलंकार-याचना पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, हृष्टान्त, अर्थान्तरगम्यास आदि अलंकार पर तो विनयपत्रिका के कवि का असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। शब्दालंकारों में अनुप्रास से कवि को अधिक प्रेम रहा है।

प्रश्न २१—गीत-परम्परा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए विनय-पत्रिका का उसमें स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—सगीतारमक छन्द को गीत कहा जाता है। काव्य में सगीत का समावेश हृदय के भावों की मधुरतम अभिव्यक्ति के साथ होता है। अतः अनुभूति की कोमलता के साथ भाषा की सुकुमारता भी उसका अनिवार्य अंग बन जाती है। यही कारण है कि काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप 'गीत' माना जाता है। पाठक के हृदय को भावावेश में लाने की सर्वाधिक शक्ति गीत में होती है। उसमें हृदय अनुभूति के माधुर्य की परिधि पर घुमकर केन्द्राभिमुखी हो जाता है। अतः गीत का आकार भी लघु होता है। शब्द-चयन, भावाभिव्यक्ति एवं छन्द-योजना के क्षेत्रों में गीत की कुछ मर्यादाएँ होती हैं। इन मर्यादाओं में घुँसकर जब कवि की वाणी मुखर हार्ता है, तभी गीत का जन्म होता है।

भारतीय साहित्य में गीत की परम्परा बहुत प्राचीन है। आर्यों के आदि-साहित्य 'वेदों' में ही 'गीत' का उद्भव माना जाता है। सामवेद गान-विद्या का ही वेद है। ऋग्वेद आदि की ऋचाएँ भी गेयता के गुण में युक्त हैं। संस्कृत-साहित्य में महापि वाल्मीकि के पश्चात् भातों की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। प्राकृत आदि भाषाओं में जब साहित्य को लोक-जीवन के निकट प्रस्तुत किया तब लोकगीतों की परम्परा भी उद्भूत हुई, जो अब तक चली आ रही है। नाटकों की परम्परा संस्कृत में बहुत पुरानी है। उनमें भी गीतों को स्थान मिला है। कालिदास आदि श्रेष्ठ कवियों के काव्य एवं नाटक गीत-तत्त्व से युक्त मिलते हैं। जयदेव की 'गीत गोविन्द' संस्कृत की गीत-काव्य सम्बन्धी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक है, जिसने हिन्दी में विद्यापति जैसे गीतकारों को

जन्म दिया। हिन्दी का भक्तिकाल गीत-तत्त्व को स्वीकार करने में सबसे आगे रहा। हम इस काल के सभी प्रमुख कवियों की रचनाओं में गीत-तत्त्व का विकास देखते हैं। मूर और मीरा इस काल के सबसे अधिक मधुर गायक माने जाते हैं। तुलसी भी अपने युग की इस गीतोन्मुखी प्रवृत्ति की उपेक्षा नहीं कर सके। उनकी 'गीतावली', 'कृष्ण-गीतावली' तथा 'विनयपत्रिका' आदि रचनाएँ इस बात का अटल प्रमाण हैं।

तुलसीदास के परवर्ती कवियों ने भी गीत-परम्परा का ज़रम नहीं तोड़ा। रीतिकाल में देव, पदमाकर, सेनापति आदि कवियों के कवित्त-सर्वभेद स्पष्ट रूप में उसी प्रवृत्ति का फल है, यद्यपि ये कवि अपने युग की कतिपय अन्य प्रवृत्तियों के कारण गेय पदों की रचना करने के लिए अधिक उत्साहित नहीं हुए। आधुनिक युग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से ही उस परम्परा का पोषण प्रारम्भ हुआ और छायावादी युग में आकर वह खूब फूली-फली। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि छायावादी कवियों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, मवीन, मुमद्राकुमारी चौहान आदि ने भी गीत लिखे। आजकल भी हमें उस परम्परा का अन्त दिखाई नहीं देता। अनेक कवि सुन्दर तथा सरस गीतों की रचना करने में व्यस्त हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि बीरगाथा काल से आज तक अटूट रूप में चली आती हुई इस गीत-परम्परा में विनयपत्रिका का क्या स्थान है।

विनयपत्रिका तुलसीदास की एक अष्ट, भाव-पूर्ण मुक्तक काव्य-कृति है। इस काव्य में उन्होंने 'पद' की शैली का प्रयोग किया है। मध्य-युगीन हिन्दी-साहित्य में इस शैली का प्रयोग कई कवियों ने किया है। अष्टछाप के सभी कवियों की रचनाएँ पद-शैली में ही मिलती हैं। मीरा का बृहन् काव्य भी पदों में ही लिखा गया है। बीर ने भी पदों में ही अपने सरस भाव व्यक्त किए हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तुलसी ने पदों की शैली में गीतावली, कृष्ण-गीतावली एवं विनयपत्रिका नामक तीन बड़े ग्रन्थों की रचना की है। गीतावली और कृष्ण-गीतावली में भी सरस पदों का स्थान मिलता है, किन्तु विनयपत्रिका के पद उनकी सरसता से भिन्न-भिन्न कोटि की सरसता रखते हैं। उनमें गीतावली या कृष्ण-गीतावली की तरह राम या कृष्ण के चरित्रों को प्रधानता नहीं दी गई। मीरा ने अपने पदों में अपनी विरह-व्यथा की विस्तार से व्यञ्जना की है। विनयपत्रिका में उस प्रकार की विरह-व्यञ्जना की भी कोई

स्थान नहीं मिला । कबीर के समान घट के भीतर की बात भी तुलसी ने विनयपत्रिका के पदों में नहीं बताई । उसमें उनका भक्त-हृदय मुखर हुआ है । सूर ने अपने विशाल ग्रन्थ 'सूरसागर' की रचना भी पदों में की है किन्तु वे भी उसमें कृष्ण-चरित्र के अवगाहन में लगे रहे हैं । पर विनय-सम्बन्धी पदों का भी उसमें अन्वय नहीं है और सूर के उन्हीं पदों से तुलसी की विनयपत्रिका से तुलना की जा सकती है । तुलसी के पूर्व या पश्चात् उनके समान क्रमबद्ध तथा सुनियोजित रूप में विनयपत्रिका की सी रचना पद शैली में किसी अन्य कवि ने नहीं की । सूर के विनय सम्बन्धी पदों का भी विनयपत्रिका के पदों की तुलना में अधिक महत्त्व नहीं है ।

अतः यह निश्चित हो जाने पर कि पद-शैली में लिखित विनय-साहित्य में तुलसी की विनयपत्रिका ही एकमात्र चमकता हुआ अद्भुत नक्षत्र है, हमें उसके गीत-तत्त्व की परख करके उसके गीत-परम्परान्तर्गत विचारणीय मूर्धन्य स्थान का स्वरूप स्पष्ट कर देना चाहिए ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, छन्द में सगीत का समावेश होने पर ही गीतिकाव्य का जन्म होता है । अतः देखना यह है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में जिस छन्द का प्रयोग किया है, उसमें सगीत का समावेश किस सीमा तक हुआ है । इस सन्दर्भ की पूर्ति के लिए हम विनयपत्रिका के पदों की परख यह देखकर कर सकते हैं कि उसमें ऐसे पद कितने हैं, जिन्हें वाद्य-यन्त्रों के साथ गाया जा सके । वाद्य-यन्त्रों पर कोई छन्द गाया जा सकता है या नहीं, इसका निराकरण इस बात से हो जाता है कि वह छन्द राग-रागिनी के आधार पर लिखा गया है तो वह गाया जा सकता है, अन्यथा नहीं गाया जा सकता । अब देखना यह है कि विनयपत्रिका के कितने पदों में राग-रागिनी का प्रयोग हुआ है ।

हम देखते हैं कि तुलसी ने लगभग सभी पदों की रचना किसी-न-किसी राग-रागिनी में की है । कुछ उदाहरण इस सम्बन्ध में पर्याप्त होंगे । निम्नांकित पद में बराबरी राग मिलता है—

इहै परम फलु परम बढ़ाई ।

गलसिख रुचिर बिन्दुमाधव-छवि निरखहि नयन अघाई ॥

धिसद, किसोर, पीन, सुन्दर बपु, स्याम धुरधि अविकाई ।

नीलकज, बारिद तमाल मनि, इन्ह तन ते दुति पाई ॥

मृदुल चरन सुम चिन्ह, पदम मल अति मद्भुत उपमाई ।

× × × —आदि ।

निम्नांकित पद भैरवी राग में गाया जा सकता है—

✓ अम पतिनैहै असवर बीते ।

हुलैय देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न रात बली ते ।

हम हम हरि धन-धाम सेवारे, अत चले उठ रोते ॥ आदि ।

× × ×

अब वैशाख राग का भी एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

बहुरैक अम्ब अवसर पाइ ।

✓ मेरिओ सुधि छाइबी, बछु बदन-बया चलाइ ॥

बीन सब भंगहीन छीन मलीन अयो अयाइ ॥

नाम सँ भरै उदर एक प्रभु दानी दास बहाइ ॥

हुनि है 'सो है बीन', बहिबी नाम दसा जनाइ ॥

सुनत राम कृपासु के मेरी बिगिरिओ बनि जाइ ॥

जानबी अमजननि जम बी बिये बचन सहाइ ।

सरै सुनसीदास तब तब-नाथ गुनगन गाइ ॥

इसी प्रकार विनयपत्रिका के अन्य पदों को भी विभिन्न रागों में विन्यासित किया जा सकता है । हमें समस्त विनयपत्रिका के पदों में बरनाम, बागहरा, दोरी, चनाची, मलार, रामबली, टोरी, माक, विलावल आदि अनेक राग मिलते हैं । इस प्रकार समस्त विनयपत्रिका समस्त को सुना पर सुन जाती है । हम उल्लेख सभी पदों को बागहरा पर सरलता से गा सकते हैं ।

एक बात और ध्यान देने की यह है कि सुनसी ने बड़ी सफलता से विभिन्न रागों में अपने भावों को व्यक्त किया है । रासनुबल बाह-भजन हो इस बात का प्रमाण है कि सुनसी विनयपत्रिका को एक सफल व व्यक्त दोषि-नाथ का रूप देने में सबसे और सफल निष्ठ हुए हैं । उदाहरणार्थ उन्होंने अपने करव-भार को बनार, बसाबरी, वैशाख, रागट, जगन्नीली आदि रागों में व्यक्त किया है—उल्लेख बागना को बरिबरी के लिए उन्होंने बागः भैरवी, चनाची तथा भैरव आदि रागों को बरगना है; करव-नाथना को बरिबरी के लिए,

सारंग आदि रागों में की है तथा दण्डक, टोड़ी, रामकसी आदि रागों में उन्होंने वर्णनों को स्थान दिया है। यह सब होते हुए भी कहीं भी विनयपत्रिका में राग-रागिनी का भार भाव की आक्रान्त करता दिखाई नहीं देता। सर्वत्र सरल, सरस तथा गुरुकुमार शब्दावली में सरस एवं कोमल भावों की ध्वजना हुई है तथा जहाँ कर्कश वर्णों की आवश्यकता हुई है, वहाँ तुलसी ने उनकी भी अपेक्षा नहीं की है। हम विनयपत्रिका के पदों को गाते-गाते केवल संगीत में ही तन्मय नहीं होते, अपितु कवि के भाव में सबसे अधिक निमग्न होते हैं। कवि के हृदय में भाव जिस क्रम से उद्बुद्ध होकर पदों में आए हैं, उसी क्रम से हम भी उनमें अवगाहन करने लगते हैं। यही कारण है कि भावना की तीव्रता प्रथम पंक्ति के पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और अन्त में उसमें क्रमशः उतार आता जाता है। विनयपत्रिका का कोई भी पद इस दृष्टि से परखा जा सकता है।

अतः यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त किया जा सकता है कि गीति-काव्य की परम्परा में गीति-तत्त्व की दृष्टि से तुलसी की विनयपत्रिका का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम उसमें भाव एवं सङ्गीत का अद्भुत सामंजस्य पाते हैं। तुलसी के पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी अन्य कवि ने स्वानुभूति की ध्वजना के लिए पद-शैली में ऐसा सामंजस्य उपस्थित नहीं किया।

प्रश्न २२—“विनयपत्रिका तुलसी के वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य का अद्भुत ममूना है।” इस कथन का विस्तार से विवेचन कीजिये।

उत्तर—कवि और साधारण मनुष्य में सबसे बड़ा अन्तर यह होता है कि कवि उसी बात को, जिसे साधारण मनुष्य सामान्य भाषा में कहता है, ऐसे भ्रमत्कार के साथ कहता है, जिससे सुनने वाला तुरन्त प्रभावित हो जाता है। किसी भी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा-सम्बन्धी कुशलता तो अपेक्षित है ही, साथ ही हृदय के मर्म को पहचानने की एक विशेष योग्यता भी आवश्यक है। जो कवि यह जानता है कि कौन-सी बात किससे, किस समय किस प्रकार कया कंसे शब्दों में कहनी चाहिए, वही कवि वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य में दक्षता प्राप्त कर सकता है। ऐसा करने के लिए मानव-हृदय का बहुत गम्भीर और विस्तृत ज्ञान अपेक्षित है। तुलसी में वह ज्ञान और अनुभव था। अतः वे विनयपत्रिका में अपना अद्भुत वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य दिखाने में सफल हुए हैं।

वाक्-चातुर्य

तुलसी का विनयपत्रिका लिखने में मुख्य उद्देश्य है—राम की भक्ति प्राप्त करना। वे ऐसा करने के लिए विनयपत्रिका के रूप में अपने उपास्य राम की शरण में पहुँचकर जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे उन्होंने अत्यधिक वाक्-चातुर्य एवं उक्ति-वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है।

सबसे पहले हमारा ध्यान विनयपत्रिका के प्रारम्भिक पदों की ओर जाता है। तुलसी को यह ज्ञात था कि सिद्धि के दाता गणेश हैं। अतः अगर राम की शरण में पहुँचकर भक्ति का लाभ प्राप्त करना है, तो गणेश की सबसे पहले बन्दना होनी चाहिए। यही सोचकर वे प्रथम पद में गणेश-स्तुति करते हैं। उस स्तुति में ही उनका वाक्-चातुर्य प्रकट हो जाता है; देखिये, वे कहते हैं—

माइये मनपति जगवन्दन ।

संकर - सुवन - भवानी - मन्दन ॥

सिद्धि-सदन, गजबदन, विनायक ।

कृपा-सिन्धु सुन्दर सब सायक ॥

मोदक - प्रिय मुर-मयल - दाता ।

बिद्या-धारिणि, बुद्धि-विधाता ॥

मंगल तुलसिदास कर जोरे ।

बसहि रामसिध मानस मोरे ॥

॥ पद में तुलसीदास ने गणेश से सिद्धि प्राप्त करने के लिये उनकी प्रशंसा की है। यह उनकी वाक्-चातुरी का ही प्रमाण है। हम जिससे कुछ लेना चाहते हैं, उसे प्रसन्न करके ही ले सकते हैं और प्रसन्न करने का सीधा सा उपाय है, उसकी प्रशंसा कर देना; क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रशंसा में किसी को प्रसन्न कर सकने की अपार क्षमता निहित होती है। तुलसी ने भी गणेश को 'सिद्धि-सदन', 'कृपा-सिन्धु', 'सब सायक' आदि विशेषण देकर उसी मनोवैज्ञानिक सूत्र-बूझ का परिचय दिया है। उनका यह कार्य वाक्-चातुरी की ही सीमा में आता है। 'राम और सीता' के प्रति अपनी अनन्य मक्ति का परिचय भी उन्होंने कितनी चतुराई से दिया है, यह उपर्युक्त पक्तियों में देखते ही मनता है। वे स्तुति तो गणेश की कर रहे हैं और

भक्ति 'राम-गीता' को गाँग रहे हैं। क्या यह कुछ कम वाक्-चातुर्य की बात है।

आगे गियत्री की स्तुति करते हुए वे पुनः उसी वाक्-चातुर्य का परिचय देते हैं—

देव बड़े, दाता बड़े, साँकर बड़े भोरे ।

✓ किये बुर कुल सवनि के, जिन जिन कर जोरे ॥
 तेरा सुमिरन पुमियो, पात मासत घोरे ।
 दिखी जगत जहँ सगि सहे, सुख, गज, रथ, घोरे ॥
 गाँव बसत बामदेव, मैं बघहँ न निहोरे ।
 अधि-भौतिक बाधा भई, ते किकर सोरे ॥
 बेगि धोति बलि बरजिये, करतूति कठोरे ।
 सुलसी दस दँव्यो चहँ, सठ साति तिहोरे ॥

इस पद में भी उनका वही वाक्-चातुर्य व्यक्त हुआ है। प्रथम पंक्ति इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने योग्य है।

वाक्-चातुर्य का सबसे सुन्दर प्रमाण तुलसी का सीता-स्तुति सम्बन्धी निम्नांकित पद है—

कधहुँक अग्य अवसर पाइ ।

✓ मेरिअ सुधि छाइबी, कछु करन-कथा बलाइ ॥
 दीन सब अगहीन छीन भलोनि अघी अघाइ ।
 नाम सं भरँ उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
 सुनि हैं 'सो है कीम', कहिबी नाम दसा जनाइ ।
 सुनत राम कृपालु के मेरी विगारिअ बनि जाइ ॥
 जानबी जगअननि जन की किये बचन सहाइ ।
 सरँ तुलसीदास भव तब-नाथ-गुनगन गाइ ॥

कितनी चतुरता से इन पंक्तियों में तुलसीदास ने सीताजी को 'माता' सम्बोधन के साथ राम से अपना उद्धार कराने का उपाय बतलाया है। भला अब भी क्या वे राम तक तुलसी की प्रार्थना नहीं पहुँचायेंगी?

यहीं तक नहीं, तुलसीदास ने बड़ी चतुरता से सीता जी के सामने राम की भी प्रशंसा की है, ताकि सीता जी अपने पति की प्रशंसा सुनकर उन पर

प्रमत्त हो जायँ । निर्माकित पंक्तियों में उनका यह अद्भुत वाक्-चातुर्य द्रष्टव्य है—

बढ़ते समय सुधि छाड़बी मेरी भातु जानकी ।
जब बड़ाइ नाम सेत हो, किये पन चातक ज्यों,
प्यास प्रेम-पान की ॥

सरल प्रकृति थापु जानिए करवानिधान की ।
निजगुन अरिहत अनहितो दास-दीप,
सुरति छित रहत न दिये दान की ॥

आनि बिसारनसेल है मानद अमान की ।
तुलसीदास न बिसारिये मन कम सचन जाके,
सपनेहुँ गति न आज की ॥

जिससे हुना की दावना की जाय—उसको प्रमत्त करने के लिए उसकी प्रशंसा की जाय; केवल यही तक तुलसी का वाक्-चातुर्य गीमिन नहीं है । वे यह भी जानते हैं कि देने वाला लेने वाले पर अरुण प्रभाव भी अमाना चाहना है । कम यदि पहिले से ही अपनी हीनता स्वीकार कर ली जाय तो जल्दी काम बन सकता है । यही सोचकर तुलसी ने अपनी हीनता की अनेक बार चर्चा की है, जो उनकी वाक्-चातुरी का ही प्रमाण है; यथा—हनुमान जी का प्रभाव स्वीकार कर अपनी हीनता दिखाने हुए वे कहते हैं—

साईं लोकी भागि में तेरो नाम लिया रे ।
तेरे कम, कनि आबु लो जग आगि दिया रे ॥
ओ लोको होयो फिरी मेरो हेतु दिया रे ।
तो क्यों अरुन देखावयो कहि कहन दया रे ॥
लोको प्यान-निधान को लखैय दिया रे ।
हो हनुमान साईं-ओह की कनि द्वार दिया रे ॥
तेरे स्वामी राख से, स्वामिनो तिया रे ।
तुलसी के जीन को बाबो लखिया रे ॥

एक वे करते दो उगोरे अनेक बार अपनी हीनता इसी अद्भुत वाक्-चातुर्य के साथ व्यक्त की है । एक उदाहरण देखिए—

✓ तू बपासु, बीन हों, तू दानि हों, मित्तारी ।
हों प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी ॥
माप तू अनाप को, अनाप कोन मोसो ?
भो समान आरत नहि, आरतिहर सोसो ॥

इतना होने पर भी हो सकता है कि राम उनसे प्रसन्न न हों और अपनी शरण में न लें, इसलिए वे अद्भुत वाक्-पटुता का परिचय देते हुए पहले ही यह बता देते हैं कि हे राम ! मेरे लिए तुम्हारे अलावा अन्य कोई शरण नहीं है । मैं तुमसे भी न कहूँ तो किससे कहूँ ?

तुम तजि हों कासों कहीं, और को हित् मेरे ?
बीनबंधु ! सेवक सत्ता आरत अनाप पर
सहज छोह केहि केरे ॥

और भी—

जाऊँ कहां, डोर है कहां देव ! बुझित बीन को ?
को कृपासु स्वामी सारिलो राखे सरनागत
सब अंग बल-बिहीन को ।

राम शायद यह कहकर उन्हें अपने द्वार से भगा दें कि तू बड़ा पापी है, शरण देने के योग्य नहीं, इसलिए तुमसी उन्हें पहले से ही यह बता देने हैं कि हे राम ! तुमने बड़े-बड़े पापियों का उद्धार किया है और तुम्हारा वह विरद सुनकर ही मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि मैंने पाप किए हैं, पर यह भी तो जानता हूँ कि तुम जैसे समर्थ ॥ उसका उल्लेख कर देने पर सहज में सुख-साम कर सकूंगा । वे यह बात किस वाक्-चातुर्य के साथ कहते हैं—

✓ कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सो, बलि, बीनता ।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-बीनता ।

× × ×
गीय सित्ता, सबरी की सुधि सब दिन किये ।
होइगी न साईं सों सनेह-हित-होनता ॥

× × ×

तथा—

ध्याय धित दै चरन मार्यो मूढ़ मति मृग जानि ।

सो सनेह स्वस्तोक पठयो भगट करि निज धानि ॥

कोन तिन्ह को कहैं जिन्ह के मुहुत अरु अघ दोउ ।

भगट पातक दप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥

कितनी भतुराई के साथ वे स्वयं ही कह देते हैं कि 'तुलसी' जैसे 'प्रकट पातकी' से भी क्या अब राम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि तुलसी तुम मेरे द्वार से चले जाओ, मैं तुम्हें अपनी शरण में नहीं लेना चाहता ?

किसी के पीछे पड़ जाने के लिए जिस चमत्कारिक वाक्-पटुता की आवश्यकता होती है, यह तुलसी की निम्नांकित पक्तियों में प्रकट है; वे कहते हैं—

✓ छोटी सरो रावरो हौं, रावरे सौं भूठ क्यों कहोंगो,
जानो सबही के मन की ।

करम बचन हिये कहों न कपट किये,

ऐसी हठ जैसी गाँठ पानी परे, सन की ॥

कही राम उन्हें फटकार न दें कि तुमने पाप क्यों किए, इसका रास्ता तुलसी पहले से ही अपने मन के सम्बन्ध में यह कहकर बन्द कर देते हैं कि—

मेरो मन हरिज ! हठ न सजै ।

निसहित नाथ ! देउं तिल बहु विधि, करत सुभाउ निजै ॥

क्यों पुबती अनुभनति प्रसव अति दायन कुल अपजै ।

हैं अनुकूल बिसारि मूल सठ पुनि जल पतिहि भजे ॥

सोनूप भ्रमत गृहपसु क्यों जहैं सहैं तिर पददान अजै ।

तदवि अपम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूठ सजै ॥

हो हार्यो करि-अतन विविध अतिस प्रबल अजै ।

सुलसिवास बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु खरजै ॥

प्रथम तथा अन्तिम पंक्ति में तुलसी की समस्त वाक्-चातुरी का रहस्य दिया हुआ है । विनयपरिका में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है ।

उक्ति-वैचित्र्य

तुलसी ने वाक्-चातुर्य को कहीं-कहीं इतना अधिक ऊँचा चढ़ा दिया है कि



बहु बेहि बहिय हृपानिये । भव-जनति विपति अति ।

×

×

×

तुलसीदास कहें भास यहै बहु पतित उधारे ।

निम्नांकित पंक्तियों भी साहित्यिक उक्ति हैं एक अन्धा उदाहरण है—

दूरि कीजे द्वारते सबार सासची प्रपची,

मुषा-सो ममित मुकरो ध्यों गहड़ोरियों ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच पाते हैं कि तुलसीदास ने विनयपत्रिका में वाक्-चातुर्य एवं लक्ष्मि-वैचित्र्य द्वारा अपने भावों को अत्यन्त काव्यपूर्ण रूप से व्यक्त किया है । इनकी भाषा में इन दोनों गुणों के कारण पर्याप्त शोचनता या गर्ह है तथा अभिव्यक्ति को भी पर्याप्त सशक्तता प्राप्त हुई है ।

प्रश्न २१—‘विनयपत्रिका’ में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और आतु-ला का राग सर्वत्र जलाया है । क्या इस राज्य को आत्म-चरित्र-प्रधान कहा जा सकता है ? यदि नहीं, तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिए ।

उत्तर—बहि की अनुभूति में समाज का हृदय होता है । वह अपने जीवन में जो कुछ अनुभव करता है, उसी को प्रायः वह काव्य की वाणी प्रदान करता है । वह समाज का एक विशिष्ट प्राणी होता है । सामाजिक जीव उसको अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति जीवन है । इसलिए वह जो लिखता है, उसमें केवल उसी के हृदय-दुःख साधारण नहीं होते, बल्कि समाज की विभिन्न अनुभूतियों को उसकी वाणी बन जाती है । इस दृष्टि से किसी भी बहि की कला-कृति के बारे में न तो केवल उसके वैयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है और न वैयक्तिकता-निर्देश सामाजिक अनुभव-भाषा । महाबहि गोस्वामी तुलसीदास की विनयपत्रिका के अध्ययन में भी यही बात बड़ी जा सकती है । हमने तुलसी ने अपनी हीनता और आनुरता का राग सर्वत्र जलाया है, परन्तु इसका यह अर्थ बतलाने नहीं है कि उन्होंने अपनी आत्म-चरित्र मिलाने के लिए ऐसा किया है, और न यही कहा जा सकता है कि उसने अपने आत्म-चरित्र का दुर्लभ अभ्यास है । वास्तव में विनयपत्रिका में प्रारम्भ से अन्त तक तुलसी की अपनी हीनता और आनुरता का वर्णन करते पाते हैं, बिना यह हीनता एवं आनुरता सामाजिक समाज का ही स्वर बन गई है; तथा—

उगमें अगर विविधता का दर्शन होता है। हमें अनेक ऐसी उक्तियाँ विनय-पत्रिका में मिलती हैं, जिनमें अभिव्यक्ति का पर्याप्त वैविध्य पाया जाता है; उदाहरणार्थ—जब वे कहते हैं कि—

तो ही बार-बार प्रभुहि पुकारिँ तिनानतो न
 जो वे मोचो होतो बहूँ टाकुर-उहठ ।

तब उनका उक्ति-वैविध्य स्पष्टतः सामने आ जाता है। वे यह कहकर कि 'हे राम ! यदि मुझे कोई अग्य स्वामी या स्थान शरण के लिए मिल जाता तो मैं बार-बार आपको पुकार कर परेशान न करता !' क्या सुन्दर चमत्कारिक उक्ति है यह ! वे सीधी यह बात न कहकर कि मैं तुम्हें बच से पुकार रहा हूँ, किन्तु तुम्हारे काम पर जूँ भी नहीं रेंगती—उपयुक्त विविध कथन का प्रयोग करते हैं। यहीं तक नहीं, उन्हें स्वामी की बात के बिगड़ने-बनने का भी पर्याप्त ध्यान है, यह बात वे किम वैविध्य के साथ कहते हैं—

कहाँ बसि घेद जो न लोक कहा बहेतो ?

इसमें उक्ति-वैविध्य इसलिये है, क्योंकि वास्तव में उन्हें बिता तो अपने उधार की है, पर वे यह रहे हैं कि मुझे तो बेयल स्वामी के यश-अपमय की ही चिन्ता है। इसी प्रकार राम को 'अनापपति' की संज्ञा किस 'अहसान' के साथ वे दे रहे हैं, यह निम्नांकित पक्तियों से देखिए—

हैं सनाथ हूँ ही सही तुम हूँ अनापपति,
 जो लघुतहि न भितें हो ।

तुलसी की उक्ति-सम्बन्धी विविधता का इन पक्तियों में भी स्पष्ट दर्शन होता है—

प्रगट कहत जो सकुचाए अपराध भूयो हों ।

तो मन में अपनाइए सुलसिहि कृपा करि कलि बिसोकि हर्यो हों ॥

लासणिक पदावली के साथ वे अपनी उक्ति-सम्बन्धी विविधता प्रकट करते हुए कहते हैं—

तुलसी कहो है साँची रेल बार-बार साँची,
 दोल किये नाम-महिमा कों नाथ खोरिहों ।

व्यजनात्मक पदावली के साथ तुलसी ने उक्ति-वैविध्य का उदाहरण निम्नांकित पक्तियों में प्रस्तुत किया है—

‘श्रीरामचरितमानस’ विमने निम्ना या और राम-बधा का गान करता हुआ सन-भारतग मे समस्त जीवन व्यतीत करने वाला वह महाकवि बौन था, जिसकी बाणी अब भी भारत के वायुमण्डल मे गूँज रही है ? निस्सन्देह उपर्युक्त पद मे तुलसी आरम-चरित विमने नहीं बैठे । उन्होंने उसमे अपनी हीनता और आनुरता-मान व्यक्त की है तथा समाज के उन व्यक्तियों का चित्र रीखा है, जो राम-सज्जन किए बिना समस्त जीवन विषय-भुग के भोग, धनार्जन आदि मे व्यतीत कर देने हैं ।

जो बात हम ऊपर कह आए हैं, वही बात तुलसी ॐ निम्नांकित पद के विषय मे भी बही जा सकती है, जिसमे उन्होंने पुनः सगमग वैसे ही भावनाएँ व्यक्त की हैं; वे कहते हैं—

जनम गयो आदिहि बर कीति ।

परमारय पासै न पर्यो कछु, अनुदिन अधिक धनीति ॥

खेतत खात सरिरपन गो बलि, जोवन बुबतिन तियो जीति ।

रोप-बियोग-सोग-खम-संकुल अड़ि अय कृषहि अतीति ॥

राग-रोप-ईर्ष्या-विमोह-बस रची न साधु-समीति ।

बहे न गुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति ॥

हृदय बहत पछिनाय-जनम अय, सुनत दुमह भवभीति ।

तुलसी प्रभु तैं होइ सो कीजिये समुझि विरव की रीति ॥

आगे फिर वे ऐसी ही बात कहते हैं । इसे भी हम तुलसी का आरम-चरित वर्णन नहीं मान सकते—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने ।

प्राननाय रघुनाथ से प्रभु तजि, खेतत खरन विराने ॥

जे जड़ जीव कुटिल जायर बल, केवल कलि मल-साने ।

सुखत यदन प्रसंसन तिन्ह बहें, हरि तैं अधिक करि माने ॥

सुख हित कोटि उपाय निरन्तर, करत न पाय विराने ।

सदा मलोन पंथ के मल ज्यों, कयहुं न हृदय विराने ॥

यह शीनता दूर करिये को, अमित धन उर आने ।

तुलसी चित-चिता न मिटे, बिनु चितामनि पहचाने ॥

वास्तविकता तो यह है कि इन सब उदाहरणों मे तुलसी की अपनी हीनता और आनुरता ध्वनित हो रही है तथा सांसारिक चक्र मे पड़े हुए जीवों की

राम-विमुक्तता एवं विषयाभिरुचि अभिव्यक्त हो रही है। एक अन्य उदाहरण इस सम्यन्ध में और द्रष्टव्य है; तुलसी कहते हैं—

घाल घसा जेते पाए ।

अति असीम नहि चाहि गिनाए ॥

छुआ-भ्याधि-बाधा भइ भारी ।

खेवन नहि जानै महतारी ॥

जननी न जाने पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै ।

सोइ करै विविध उपाय, जातैं अधिक तुव छाती जरै ॥

कौमार संसब भरु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।

व्यतिरेक सोहि निरदस ! महासस ! आन कहु को सहि सके ।

ये पंक्तियाँ इस तथ्य को स्पष्ट कर देती हैं कि तुलसी कोई विशेष बात नहीं कह रहे, वे तो एक सामान्य बात कहना चाहते हैं। वह बात तुलसी की अपनी बात नहीं है, अपितु जीव-मात्र की बात है। तथापि यह तो माना जा सकता है कि उनकी उस पर-वार्त्ता में भी उनकी स्वकीय हीनता और आतुरता की भावनाएँ तो छिपी ही हुई हैं।

कुछ आलोचकों ने निम्नांकित पंक्तियों को तुलसी की वृद्धावस्था का प्रमाण माना है और उनके आधार पर यह कहा है कि “इस प्रकार बाल्यावस्था और यौवनावस्था का निदर्शन करने के पश्चात् गोस्वामी जी अपनी वृद्धावस्था का परिचय देते हैं। बुढ़ापे की इच्छा न करते हुए भी वह आ घमका, सारे शरीर पर छा गया, शरीर जीर्ण हो गया और रोगों का घर बन गया। सिर हिलने लगा तथा इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास हो गया।” परन्तु ध्यान देने की बात है कि क्या ये पंक्तियाँ तुलसी ने विशेष रूप से अपने लिए लिखी हैं—

बैसत ही आई बिरुपाई ।

जो ते सपनेहु नाहि बुलाई ॥

ताके गुन कछु कहे न जाहीं ।

सो अब प्रकट देखु तनु माहीं ॥

सो प्रगट तनु जरजर जरावस, व्याधि सूत सतावई ।

सिरकंप, इन्द्रिय-शक्ति प्रतिहत, बचन काह न भावई ॥

गृहपालहूते अति निरादर, खान पान न पावई ।

ऐसिहु दसा न विराग तहें, तुण्णा-तरंग बढ़ावई ॥

इन पक्तियों में सामान्य जीव की दशा का चित्रण है तथा तुलसी की वैयक्तिक हीनता और आतुरता उसके माध्यम से व्यक्त हो रही है। निम्नांकित पक्तियाँ भी इसी तथ्य का समर्थन करती हैं—

बाल-करम-इन्द्रिय-विषय गाहकमन घेरो ।

✓ हो न बबुलत, बाँधिकें मोल करत करेरो ॥

बहि-छोर तेरो नाम है, बिदईत बढ़ेरो ।

मैं बहो, सब जल-प्रीति कैं मणि उर डेरो ॥

नाम-छोट अब सगि बध्यो मलकुण जग जेरो ।

अब गरीब जन पोपियो पाइयो न हेरो ॥

जेहि कौतुक बक स्वाध को प्रभु ग्याव निदेरो ।

जेहि कौतुक कहिये कृपासु । तुलसी है मेरो ॥

निम्नांकित पक्तियों में तुलसी ने स्वयं की अनेक प्रकार के दोषों का भण्डार बताया है। हम उनमें इस कथन को उनका आरम्भपरित नहीं कह सकते। भक्ति के आवेश में उन्होंने इन पक्तियों में भगवान् के तिष्ठ अपनी हीनता एवं आतुरता ही व्यक्त की है—

बंसे डेउं नाथहि खोरि ।

✓ काम-सोसुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि खोरि ॥

बहुत प्रीति पुआइवे पर, प्रुझिदे पर खोरि ।

देत सिल सिलायो न धानत, मुड़ता असि खोरि ॥

बिये सहित सनेह के अघ, हृदय राखे खोरि ।

सग-बस बिये भुम मुनाये, सजस खोरि निहोरि ॥

करो खो बछू परो सविपशि मुहुत-सिला बडोरि ।

पंछि उर बरबस बयानिधि हम सेत भंजोरि ॥

सोम मनहि मचाव बपि क्यो, परे आसा खोरि ।

दात कही बनाह बुध क्यो बर विराग निखोरि ॥

एनेहुं पर तुम्हरो कहावत, साज भंवाई खोरि ।

निसरना पर रीझि रघुबर, देह तुलसिहि खोरि ॥

अप्राकृत पद में उन्होंने करने जिन दोषों को दिनादा है, वे भी उनसे

परित के अङ्ग न होकर उनकी हीनता एवं आतुरता की भावना को व्यक्त करने की एक झेली-विशेष की ही सूचना देते हैं—

हे प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।

✓ सीतसिन्धु, कृपासु, नाथ अनाथ, आरत-पोसु ॥
 शेष वचन बिराग मत अथ अवगुननि को कोसु ।
 राम, प्रीति-प्रतीति पालो, कष्ट-करतल ठोसु ॥
 राग-रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।
 चाहत केहरि-जसहि सेइ सृगास ज्यों खरगोसु ॥
 सभु सिलखन रसन हूँ नित राय-नामहि घोस ।
 दंभहू कलि नाम कुम्भज सोच-सागर-सोसु ॥

तुलसी ने अपनी राम-भक्ति पर कमी गर्व नहीं किया । जहाँ भी दिखाई है, वहाँ अपनी हीनता ही दिखाई है । देखिए, वे कहते हैं—

ज्यों ज्यों निकट भयो वहाँ कृपासु त्यों त्यों दूरि पद्यों हों ।
 ✓ तुम चहुँमुख रस एक राम हों हूँ रावरो,
 जदपि अथ अवगुननि भद्यों हों ।
 बीच पाइ नीच बीच ही दरनि छद्यों हों ।
 हों सुवरन कुयसन कियो, मुख तें भिलारि करि,
 सुमति तें कुमति कद्यों हों ।
 अगमित गिरि कानन फिर्यो, बिनु आनि जद्यों हों ।
 चित्रकूट गये ही लखी कलि की कुचास सय,
 भय अपहरनि डद्यों हों ।
 माय नाइ माय सो कहों हाथ जोरि खद्यों हों ।
 धोहों धोर जिय मारि है तुलसी सो कथा
 सुनि, प्रभुसो भूदरि निखद्यों हों ।

निम्नांकित पक्तियों में से यद्यपि तुलसी का जीवन भी पर्याप्त अर्थों में घोल रहा है, तथापि अधिकशः भाव अपनी हीनता एवं आतुरता को प्रकट करने की उनकी प्रवृत्ति के ही प्रतीक हैं—

बहा न कियो कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?

✓ राम-रावरे बिन भये जन जनमि जनमि
 जग दुख दसहूँ विसि पायो ॥

आह-बिबस खास दास हूँ नीच प्रभुनि जनायो ।
 हाहा जरि दीनता बही द्वार द्वार बार बार,
 परो न द्वार भुँह बायो ।
 भसन बसन बिनु बावरो अहं सहं उठि धायो ।
 महिमा मनप्रियमान ते सजि सोसि लसनि धामे,
 सिनु-लिनु पेट रसायो ॥
 नाच । हाथ बटु नाहिं लाग्यो सासव सलघायो ।
 साँच कह्यो नाच कौन सो जो न मोहि,
 सोभ सघु निसग्ग नचायो ॥
 छदन भयन मन मग लगे सव घसपति तायो ॥
 मूढ़ मारि हिय हारि कं हित हेरि हरि
 भव घरन-सरन तकि आयो ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में अपनी हीनता और आनुरता का राग सर्वत्र अलापा है। उसमें जो भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, वे उसकी उसी प्रकृति की देन हैं। उन भावनाओं से उनके जीवन-चरित का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता, क्योंकि अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वयं को सामान्य जीव के समान सासारिक पापात्मा घोषित किया है तथा अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों एवं दुराचारों में लिप्त बतलाया है, - जबकि वे एक अलग राम-भक्त तथा सदाचारी साधु कवि थे। अतः विनयपत्रिका को हम आत्मचरित-प्रधान काव्य नहीं कह सकते।

प्रश्न २४—विनयपत्रिका से उपयुक्त उद्धरण देकर सिद्ध कीजिए कि तुलसी का साधु-मत वास्तव में सोक-हित का प्रतिपादक है।

उत्तर—कवि अपनी वाणी से सोक-जीवन का दिशा-निर्देशन करता है। वह अपनी कृति में जैसे भाव और विचार व्यक्त करता है, वैसे ही प्रभाव सोक-जीवन पर उसकी उस कृति का पड़ता है। अतः काव्य को सामाजिक जीवन के साथ सम्बन्धित करने वाला एक बहुत महत्वपूर्ण तत्त्व है, उसमें अन्तर्निहित 'सोक-हित की भावना'। जो कवि आत्म-सुख की कामना से काव्य-रचना करता है, वह भी प्रत्यक्ष या परोक्ष में सोक का हित या अनहित करता है। यह सोक-हित या अनहित उस कवि की आत्म-सुख-सम्बन्धी धारणा के रूप पर निर्भर है। यदि आत्म-सुखार्थी कवि सामंसी या राजसी कृति का

व्यक्ति है, तो वह अपने काव्य से लोक-हित की सोचा में प्रवेश नहीं करता। केवल सात्त्विकी वृत्ति का कवि ही आत्म-स्वार्थी होने पर भी लोक-हित कर सकता है। उसका आत्म-सुख-चिन्तन लोक-हित की दृढ़ नींव पर प्रतिष्ठित होगा। तुलसी एक ऐसे ही कवि थे। यह माना जाता है कि उन्होंने आत्म-सुखाय या 'स्वान्तः सुखाय' काव्य-रचना की थी। परन्तु वे स्वयं सात्त्विकी वृत्ति के व्यक्ति थे। अतः उनका 'स्वान्तः सुखाय' काव्य 'सर्वजनहिताय' अर्थात् लोक-हित की भावना से परिपूर्ण बन गया है।

सात्त्विकी वृत्ति का प्रत्येक व्यक्ति साधु-स्वभाव का होता है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण भी सदा साधुता-पूर्ण रहता है। अतः उसका 'साधु-मत' सदा लोक-हितकारी सिद्ध होता है। हमारे देश में 'साधु' शब्द रूढ़ अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जिसके अनुसार समाज या लोक से विरक्त होकर ईश्वराधना में लीन रहने वाला एवं भिक्षावृत्ति पर जीवन-निर्वाह करने वाला व्यक्ति 'साधु' की संज्ञा पाता है। रूढ़ अर्थ में साधु-संज्ञाधारी सभी व्यक्ति अपने साधना-मार्ग की समानता नहीं रखते। साधना में भिन्नता होने से उनके 'मत' में भी भिन्नता आ जाती है। भक्तिकाल के विभिन्न मार्गों के 'साधु' कहलाने वाले कवि इस तथ्य के प्रमाण हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि सभी 'साधु-संज्ञाधारी' थे, पर सबके मार्गों में भिन्नता है। यही तक क्यों, उसी भक्तिकाल में अनेक अन्य साधना-मार्गों को अपनाने वाले अघोरी, औषध, नाथपंथी, सिद्ध आदि भी 'साधु' ही कहलाते थे। परन्तु वे सभी सात्त्विकी वृत्ति के व्यक्ति नहीं थे। जो 'साधु' शमशान जगाते थे, मात-भक्षण करते थे तथा मदिरा-पान एवं सुन्दरी-भोग की साध्य की प्राप्ति में सहायक मानते थे, वे 'रूप अर्थ' में साधु होते हुए भी सात्त्विक वृत्ति के 'साधु' नहीं थे। अतः सभी साधुओं का मत लोक-हितकारी हो, यह अनिवार्य नहीं। तुलसी रूढ़ अर्थ में साधु नहीं थे, वे वास्तविक रूप में सात्त्विक वृत्तिधारी भगवद् साधु थे। अतः उनका साधु-मत पूर्णतः लोक-हित की भावना पर प्रतिष्ठित है। 'धीराम-चरितमानस' में उनका यह 'मत' लोक-हित की एक विशाल तथा गंभीर योजना पर आधारित है। राम के पावन चरित्र का गुणगान तथा उनकी भक्ति जहाँ लसीदास का अभोष्ट लक्ष्य है, वहाँ लोक-पीड़क रावण जैसे महादानव का रने वाले राम की लोक-लीला का प्रचार भी उनका उद्देश्य है। अतः। काव्य में तो स्पष्टतः तुलसी का साधु-मत लोक-हित का प्रतिपादक

है। विनयपत्रिका पूर्णतः आत्मनिव्यक्ति-परक काव्य है। अतः इस काव्य में उसका साधु-मन जिस रूप में व्यक्त हुआ है, उस रूप में भी सोच-हित की भावना विस्तार से स्थान पा गई है।

विनयपत्रिका में तुलसी ने जिस साधु-मन को व्यक्त किया है, हमके पीछे क्षिप्र सोच-हित के दृष्टिकोण को हम संक्षेप में निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत समझ सकते हैं; यथा—

(१) जीव और ब्रह्म की अभिन्नता

तुलसी ने अपने साधु-मन का रूप अनेक दर्शनों के उन तत्वों के व्यापार पर निर्धारित किया था, जो उन्हें अविज्ञ अज्ञे और सोच-व्यथानकारी प्रतीत हुए थे। उन्होंने जीव व स्वस्व पर विचार करते हुए यह दार्शनिक मत स्वीकार किया था कि वह ब्रह्म से वृषव नहीं है। वे 'ईश्वर-अथ जीव अविनाशी' के सिद्धांत में विश्वास करते थे। जीव के लिए ईश का अनुभव साधारण विचारों व कारण है। उनके मन से यदि वह अपने मन से उन विचारों का निर्मूलन कर दे तो ईश-भावना स उत्पन्न होन वाला साधारण दुख उबे प्राप्त नहीं हो सकता—

जो निज मन परिहरि विचारा ।

तो बस ईश-अविज्ञ सगुनि-दुख ससय सोच अपारा ॥

य पवित्र साधु-मन की सुबक होन व साथ सोच-हित की प्रतिपादक भी है। तुलसी का मत है कि साधारण दुखों का मूल कारण अपने मन में समाए हुए विचार तथा वह ईश-भावना है जो 'मै-तुम-मू' का भेद करता है। यदि मन से तारी विचार निवृत्त जाएं तथा स्व-पर का भेद-भाव नष्ट हो जाय, तो साधारण दुख भी नष्ट हो जाय। स्पष्टतः तुलसी का यह साधु-मन सोच-हित की भावना से परिपूर्ण है। सोच-जीवन के सभी दुख और बनेष्ट स्व-पर के ईश व कारण है। अनेक सामाजिक समस्याओं की नींव इसी भेद-भाव के कारण पड़ती है तथा मन व अविज्ञ विचारों से अनुपम सामाजिक सङ्घटो एवं बनेष्टों की कानि बस करते दुख का अनुभव करता है। तुलसी का मत है कि मनुष्यों की अनेक सामाजिक भावना इसी विवृत एवं व्यापक बनाने चाहिए कि स्व-पर व भेद-भाव काटकर दुखों का जन्म न हो।

(२) जीव और ब्रह्म के भेद-ज्ञान का कारण 'माया'

दुखों व साधु-मन की दृष्टि से दोनों यह है कि जीव मानावद स्वयं को

ब्रह्म से मिश्र 'माया' मिश्र गममगा है। यह माया उगे अनेक प्रकार के नाच नवाजी है।
 को ब्रह्म से, प्रतीति का नाम है। अतः तुमभी कहते हैं कि जो व्यक्ति स्व
 है तथा रजः पृथक् मानता है, वह भ्रम में पड़ा हुआ है। यह भ्रमभ्रम में भ्रम
 को साँप से भु-गर्भ का भोजन बन रहा है—'बूढ़ो भृगु-वारि सायो जेव
 है। किंतु संगार मिथ्या है, अतः जीव का 'देह-गेह' को अपना मानना भ्रम
 माया के कारण यह भ्रम माया के कारण उगके साथ चलता ही रहता है। इस
 रहा है—रण हो यह ब्रह्म से पृथक् हो गया है और अनेक कष्ट उठा

जिव जय तें हरि तें विसगाग्यो ।

तय तें देह-गेह निज आग्यो ॥

माया-भस स्वदय विसरायो ।

तेहि भ्रम तें बाधन दुष पायो ॥

गुलसी के इस मत में भी स्पष्टतः साधु-मत और लोक-हित का समन्वय
 है। वे शरीर के साथ धर्म सम तथा घर सम्पत्ति के अभिमान को मिथ्या बता कर लोगों का
 यह दम्भ सम तथा घर सम्पत्ति के अभिमान को मिथ्या बता कर लोगों का
 डालता है। प्राप्त करना चाहते हैं, जो लोक-जीवन में अनेक अनर्थों की नींव
 जो जीव से। वे लोक को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि सासारिक महत्ता,
 प्रकार से दम जीव को मिश्र मानने पर अनुभव की जाती है तथा जो अनेक
 लोक को पीस की वृद्धि करती है—मिथ्या है। मिथ्या वस्तु पर अभिमान करके
 मिथ्याभिमान डल करना मूर्खता है। ऐसा व्यक्ति सदा दुखी रहता है। अतः
 गुलसी का य का त्याग करना—जीव का सबसे पहला और प्रधान धर्म है।
 (३) जगत है साधु-मत लोक-हित का ही प्रतिपादक है।

गुलसी मिथ्या है
 समस्त आकाश साधु-मत की तीसरी सीढ़ी है—जगत् को मिथ्या बनाकर उसके
 को का त्याग करने की, वे कहते हैं—

जग नम बाटिका रही है फल-फूलि रे ।

धुवाँ के से घोर हर देखि तू न भूलि रे ।

लोक-जीवन के अनेक कष्ट सासारिक मोह से पैदा होते हैं। इसलिए
 लसी जीव को समझाते हैं—

जागु जागु जीव जड़ ! जोहै जग-आमिनी ।

देह-गेह-गेह जानि जंसे धन-दामिनी ॥

सोचत सपनेहुँ सहै संगृति सताप रे ।

✓ दूरयो मृग बारि, लायो जेबरी को साँप रे ॥

जिनको सत्सार के मिथ्यात्व का ज्ञान नहीं, वे ही उसे रमणीय समझते हैं—

अनविचार रमनीय सदा सत्सार भयकर भारी ।

सम-सतोष-दया बिबेक तें ध्यवहारो मुखकारी ॥

तुलसी का सत्सार को मिथ्या मानने में आशय यह है कि जीव को सुख-भोग का शिकार नहीं होना चाहिए । जगत् को सत्य मानकर उसे यहाँ के मिथ्या सुखों के लालच में पड़कर पाप नहीं करना चाहिए । इस साधु-मत में स्पष्टतः लोक-हित का भाव निहित है । यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जगत् के मिथ्यात्व को समझ ले तो वह उन अनाधारों से बहुत अशोभे बच सकता है, जिनके कारण लोक-जीवन विविध दुखों से परिपूर्ण रहता है ।

(४) आनन्द रूप 'राम' में पूर्ण विश्वास

तुलसी ने अपने साधु-मत के अन्तर्गत जीव को यह भी समझाने की चेष्टा की है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है । उन्होंने यही बतलाया है कि वह सर्वशक्तिमान ईश्वर आनन्द रूप है, जिससे जीव की अभिन्नता है; यथा—

आनन्द-तिगु-मध्य तब बासा ।

बिनु जाने कस मरति विपासा ॥

मृग-भ्रम बारि सत्य जिय जानी ।

तहँ तू गगन भयो सुख मानी ॥

तहँ मगन मर्यासि पान करि ।

भवदास जस माही जही ॥

मिअ सहज अनुभव क्य तब ।

सत नुसि अब आयो जही ॥

निर्मल निरजन निविहार ।

जबार सुसतें हरिहरयो ॥

निबाज राज बिहाइ नृप ।

इय सदन कारागृह पर्यो ॥

तुलसी कहते हैं कि जीव को उस परमात्मा के साथ एकाधिकार होने के

निए शारीरिक विकारों का त्याग कर देना चाहिए । ऐसा करके यह आत्म-स्वरूप से अनुराग करेगा—

बेह जनित बिहार सब त्यागै ।

तब फिर निज स्वरूप अनुरागै ॥

आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर सेना ही ब्रह्म को प्राप्त कर सेना है । राम ब्रह्म के अवतार हैं; अतः तुलसी कहते हैं—

अजहूँ बिचार विकार तजि,

भगु राम जन सुसदायक ।

भक्त-सिन्धु कुत्तर जल रष,

भगु चन्दर सुरनायक ।

बिनु हेतु कथनाकर उदार,

अपार माया तारन ।

कैवल्यपति जगपति रमापति,

प्राणपति गति कारन ।

ईश्वर-भक्ति का यह आधार भी लोह-हित का ही कारण है । आस्तिकता समाज में अनाचारों का आविर्भाव नहीं होने देती । ईश्वर में विश्वास करने वाला व्यक्ति प्रायः पाप करने से डरता है । अतः तुलसी ने राम के आनन्द रूप का जीव को परिचय देकर परोक्ष में लोह-हित का ही प्रतिपादन किया है ।

(५) साधु-संगति की आवश्यकता

ईश्वर-भक्ति प्राप्त करने के लिए तुलसी ने साधु-संगति की आवश्यकता बतलाई है । ये राम-भक्ति को सुखकारी मानते हैं, परन्तु उसके साथ-साथ यह भी कहते हैं कि बिना सत्सग के भक्ति नहीं हो सकती—

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी ।

सो भय ताप-सोक-भ्रम हारो ॥

बिनु सत्सग भक्ति नहि होई ।

ते सब मिले ब्रह्म जब सोई ॥

जब ब्रह्म दीनदयालु राघव,

साधु संगति पाइये ।

जैहि दरस-परस समगमादिक,
 पाप-रासि नसाइए ।
 जिनके मिले सुख-दुख समान,
 अमानतादिक धुन भए ।
 मह-मोह सोभ विवाद ओघ,
 सुबोध सैं सहजहि गए ।

तथा—

सेवत साधु हूँ त-भय-भार्य ।
 श्री रघुवीर चरन सौ सार्य ।

इन उदाहरणों में अहाँ एवं ओर तुलसी का साधु-मत व्यक्त है, वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि लोक-हित के लिए मनुष्यों को साधु-मार्ग में आवश्यक है। समाज में 'अनर्हित' की भावना का प्रसार कुसंग के कारण ही होता है। जिन लोगों को मत्संग प्राप्त होता है, वे प्रायः कुसंगों का शिकार होने से बचे रहते हैं। लोक-हित के लिए आवश्यक है कि समाज में सम्प्रदायों की संख्या बढ़े और सभी प्रकार के कुसंग का अन्त हो। अतः तुलसी के साधु-मत में लोक-हित का दृष्टिकोण भी परोक्षतः अन्तर्निहित है।

(६) आत्म-निरीक्षण

तुलसी ने मत्त के लिए आत्म-दोषों से अवगत रहना और उनके प्रसारण के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक माना है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि बीच में वह भावना आ जाय जो तुलसी के हृदय में इन पत्तियों के माध्यम से प्रकट हुई है—

बंते हैं नाराहि धोरि ।

✓ राम-सोमुख भ्रमत मन हरि, भगनि बरिहरि तोरि ॥

बहु प्रीति पुत्राइये वर, पुत्रिये वर धोरि ।

देन तिल तिलयो न भोजन, धुनना अल धोरि ॥

तुलसी ने निम्नांकित पत्तियों में जिस प्रकार आत्म-दोष दर्शन किया है, उसी प्रकार अब बीच अपने दोषों को समझ लेना, तभी वह भविष्य में दोषों का भाजन बनने से बच सकता है—

✓ रामचन्द्र रघुनाथक तुम सौं, हौं बिनती जैहि भाँनि करो ।

अप अनेक अवलोक आपने, अनप नाम अनुमान करो ॥

पर-बुल्ल बुल्लो पर-सुल सें, संत सीत नहि हृदय परो ।
 देखि आन की विपति परम सुल, सुनिसपति बिनु आग जरो ॥
 भक्ति विराग ग्यान साधन कहि, बहु विधि बहकत भोग फरो ।
 तिव-सरयस सुखधाम नाम तय, येंचि नरकप्रद उदर भरो ॥
 जानत हों निज पाप जसयि जिय, जल सीकर सम सुनत सरो ।
 रज-सम पर-अवगुन सुवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रजतें निदरो ॥
 माना येय बनाय दिवस निति, परवित जेहि तेहि जुगति हरो ।
 एको पल न कपहुं असोल घित, हित दें पद-सरोज सुमिरो ॥
 जो आचरन बिचारहु मेरो, कलष कोटि सागि औटि मरो ।
 तुलसिदास प्रभु कृपा बिसोकनि, गोपद-उयो भवसिधु सरो ॥

आत्म-दोष-दर्शन की यह भावना साधुमत का अंग होने के साथ-साथ लोकहित की भी सूचक है । ससार में अनेक संघर्ष इसलिए पैदा होते हैं कि मनुष्य अपने दोषों को न देखकर सदा दूसरों के दोषों का दर्शन करता है तथा उन्हें 'रज' के समान तुच्छ होने पर भी 'सुमेरु' के समान विशाल बनाकर फैलाता है । मनुष्य की यह कुप्रवृत्ति लोकहित में बाधक है । तुलसी का साधु-मत इस कुप्रवृत्ति का नाश चाहता है । अतः हम उसे लोक-हित का प्रतिपादक भी कह सकते हैं ।

(७) सन्त-स्वभाव की प्राप्ति

तुलसी का मत है कि जीव को जब सन्त-स्वभाव की प्राप्ति हो जाती है, तब वह सच्चे आत्म-सुख में लीन हो जाता है । अतः वे स्वयं भी यह कामना करते हैं कि—

कबहुं यी यहि रहनि रहोंगो ।

✓ श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा से, संत-सुभाव सहोंगो ॥
 जयालाभ सतोष सदा, काहू सौं कछु न घहोंगो ।
 परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-वचन नेम निबहोंगो ॥
 परध अचन अति दुसह खवन सुनि तेहि पावक न बहोंगो ।
 विगत भान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहि दोष कहोंगो ॥
 परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहोंगो ।
 तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविघल हरि-भगति सहोंगो ॥

ये पंक्तियाँ केवल साधु-मत की ही प्रतिपादक नहीं हैं, बल्कि लोक-हित के उद्देश्य से भी युक्त हैं। समाज में यद्यपि ऐसी दशा आना कठिन है कि सभी मनुष्य उपयुक्त स्वभाव धारण कर लें, किन्तु यदि आ सके तो उनमें लोक-हित की कितनी मात्रा निहित है, इसका महज में अनुमान लगाया जा सकता है।

सारांश यह कि समस्त 'विनयपत्रिका' ऐसे उदाहरणों से भरी हुई है, जिससे तुलसी का साधु-मत तो प्रकाश में आता ही है, साथ ही उससे लोक-हित की दशा का भी निर्देशन होता है। कोई उन समस्त उदाहरणों को पढ़-कर पूर्ण विश्वास के साथ यह कह सकता है कि 'विनयपत्रिका' में व्यक्त तुलसी का साधु-मत वास्तव में लोक-हित का प्रतिपादक है।

प्रश्न २५—ये कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण 'विनयपत्रिका' तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है ?

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास ने राम-कथा को अपनी काव्य-रचना का प्रमुख विषय बनाया था। उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' जैसा विशाल एवं लोक-प्रिय महाकाव्य लिखकर भगवान् राम की लोक-जीवा की काव्य-रसिकों की कान्छी पर सदा के लिए अमर कर दिया। गीतावली, कवितावली एवं बरवै-रामायण में भी उन्होंने संक्षेप में राम-कथा की अभिव्यक्ति की। 'विनयपत्रिका' उनकी प्रमुख रचनाओं में से एक है। इस काव्य में उन्होंने राम की कथा का गायन तो नहीं किया, किन्तु राम के गुण-मान की इसमें भी कमी नहीं है। वस्तुतः यह काव्य तुलसी की सभी काव्य-प्रवृत्तियों का निचोड़ तथा भावुकों का सर्वस्व है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने 'श्रीरामचरितमानस' से 'विनयपत्रिका' से श्रेष्ठ माना है। वस्तुतः यह काव्य कुछ ऐसी विशेषताओं से युक्त है, जिसके कारण विद्वान् उसे एक उत्कृष्ट कृति मानते हैं।

संक्षेप में, ये विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) काव्य और संगीत का अद्भुत समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका में काव्य एवं संगीत का जैसा समन्वय किया है, वैसा समन्वय उनकी किसी अन्य कृति में नहीं मिलता। 'श्रीरामचरितमानस' एक विशाल महाकाव्य तो है, परन्तु यह 'विनयपत्रिका' के समान संगीत की राग-रागिनियों पर सरा उतरने वाला काव्य नहीं। 'कवितावली' भी 'विनय-पत्रिका' के समान एक स्पष्ट काव्य है, किन्तु उसमें भी संगीत की स्थान नहीं

मिल रहा है। 'गीतावली' एवं 'वृष्ण-गीतावली' की रचना तुलसी ने पदों में की है और इनमें सन्देह नहीं कि दोनों कृतियाँ तुलसी की सुन्दर काव्य-कला का नमूना हैं परन्तु वे भी काव्य और संगीत के समन्वय के क्षेत्र में 'विनयपत्रिका' की समाना नहीं कर पाती। इन काव्य में कोई भी ऐसा पद नहीं, जिसको किसी न किसी राग में गाया न जा सके; साथ ही जिसे काव्य-कला की उत्कृष्ट कसौटी पर ग लगा जा सके। यस्मिन्तः काव्य और संगीत का समन्वय काव्य-साधना की पूर्णता का फल है। यह फल तुलसी को 'विनयपत्रिका' में सबसे अधिक मात्रा में प्राप्त हुआ है। जहाँ इस कृति का प्रत्येक पद उत्कृष्ट काव्य का नमूना है, वही प्रत्येक पद संगीत के किसी राग का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है। काव्य और संगीत के इस समन्वय से 'विनयपत्रिका' भावुकों का कण्ठहार बन गई है। निम्नोक्त पद इस तथ्य का प्रमाण है—

जाउँ बहाँ तजि खरम तुम्हारे ।

काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति डीन पियारे ॥

कीन देव बराह बिरह-हित, हठि हठि अघम उपाये ॥

राग, मृग, ध्याय, पपान, विटप, जड़, जवनकवममुत तारे ॥

देव, इन्द्र, मुनि, नाग, मनुज, सब माया-बिबस बिचारे ।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनुपौ हारे ।

इन पक्तियों में काव्य और संगीत का सुन्दर समन्वय दृष्ट्य है। यह विशेषता 'विनयपत्रिका' की उत्कृष्ट काव्य की कोटि में से जाती है।

(२) धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण

तुलसी के युग में अनेक धर्म और सम्प्रदाय अपना मतभेद फैला रहे थे। धार्मिक मत-मतान्तरों के प्रभाव से जन-जीवन से सच्ची धर्म-बुद्धि का लोप होता जा रहा था। विनयपत्रिका में तुलसी ने 'राम' को अपनी विनय तो सुनाई ही; साथ ही उन्होंने अपने युग के समस्त धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण भी कर दिया। काव्य की उत्कृष्टता इसी में है कि वह व्यक्ति की भावना में डूबा हुआ होने पर भी समाज और युग की उपेक्षा न करे। तुलसी की विनयपत्रिका में युग और समाज की वाणी मिली है। उन्होंने उसमें विभिन्न मत-मतान्तरों का निराकरण बड़ी कुशलता के साथ किया है। ऐसी कुशलता से कि कहीं भी उनकी काव्य-कला की गौणता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने गणेशजी से लेकर राम तक सभी प्रमुख देवताओं की स्तुति करके और सबसे रामभक्ति मांग कर

यह निर्णय दिया है कि मन-मतान्तरों को सामाजिक जीवन में स्थान देना उचित नहीं क्योंकि सभी देवताओं का भी उपास्य एक बड़ा देवता—राम है। इस महा देवता—परमात्मा के प्रति, मत-मतान्तरों को जन्म देकर, विवाद पैदाता उचित नहीं। उन्होंने शिव और शक्ति की वन्दना करके और उनसे राम की शक्ति का घर मीस कर शंखों, शार्ङ्गों और वैष्णवों का झगड़ा सुलझा दिया है तब राम की सगुण तथा निर्गुण—दोनों रूपों में मानकर निराकार-लकार सम्बन्धी द्वन्द्व भी शान्त कर दिया है। 'विनयपत्रिका' के पदों में तत्वा-मीन मन-मतान्तरों के निराकरण की यह चेष्टा सर्वाधिक मात्रा में व्यक्त हुई है। इस वाक्य की उन्मृष्टता प्रदान करने वाली यह एक अत्यन्त महान् और महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

शक्ति की स्तुति करने हुए तुमसी बँसी विनम्र बाणी में कहते हैं—

तुमहूँ होय-बुल बलनि, कर देवि दाया।

शिव - भुलार्जि, अनसुनुलार्जि,

कर सुमयारिनि महाभुलमाया।

×

×

×

निगम अगम-अगम मुनिनय गुन कथन,

उक्तिवर करत जेहि सहज ओहा।

देहि मा, मोहि एन प्रेम यह मेम निज,

राम धनराम तुलसी पयोहा।

और निबन्धी की काराधना में उन्हींने शिव और शक्ति-रूप पार्वती के स्तुति करा है—

काहरो राहरो नाहूँ भवानी।

हानि बड़ो, हिन देन हरे विनु, जेद-जड़ाई भानी ॥

निज घर की करवानि शिलो-बहु, हो तुम घरम राजानी ॥

शिव की हुई सम्पदा देलन, ओ-सारदा सिहानी ॥

जिनहे काम निखी तपि मेरो, भुल की भरी निमानो ॥

निज रंजन की बाह संवारन, हो बाढी नहवानो ॥

हुकी होयजा दुसिदन के दुल, जाचवना अहुनानी ॥

पर अविचार कीन्ति औरहि, भौख कानी में जानी ॥

प्रम-प्रसंता-विनय व्यंग्यजुन, सुनि विधि की बरबानी ।

तुलसी मुदित महेस मनहि मन, भगत-मानु मुसकानी ॥

मत-मतांतरों के निराकरण में तुलसी ने मण्डन-मण्डन का बौद्धिक मार्ग नहीं अपनाया है, अपितु भाषात्मक ढंग से उन्होंने धार्मिक विश्वासों में सम-रसता लाने की चेष्टा की है। इस प्रकार 'विनयपत्रिका' जीवन को काव्य से सम्बन्धित करती है। निस्सन्देह ऐसी कृति, जो बिमो भी प्रकार ॥ सामयिक संघर्ष के उन्मूलन में सहायक होती है, एक उत्कृष्ट कृति कहलाने की अधिकारिणी है।

(३) भक्ति का चरमोत्कर्ष

भक्तिकाल की अधिकांश कृतियों में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति प्रधान रही है। 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है। उसमें हम भक्ति की एक पूर्ण पद्धति का अनुसरण पाते हैं। भक्त-हृदय की निश्चल भाँकी हमें उसके हर एक पद में मिलती है। कवि जिस विषय को अपनी काव्य-रचना का विषय बनाता है, उसे यदि वह चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में समर्थ होता है, तो निस्सन्देह उसकी कृति उत्कृष्ट कही जायगी।

'विनयपत्रिका' में हमें भक्ति का चरमोत्कर्ष मिलता है। तुलसी का भक्त-हृदय उसकी हर पंक्ति में मुखरित हो रहा है। एक उदाहरण देखिए। कितनी विनम्रता, समर्पण-भावना एवं अनन्यता के साथ तुलसी कहते हैं—

गरंगी जीह जो कहीं और को हों ।

जानकी जीवन ! जनम-जनम जग ज्वायो तिहारेहि और की हों ॥

सौन लोक तिहुँ कास न देखत सुहृद राखे और को हों ।

तुम सौं कपट करि कसप-कसप कृमि हूँ हों मरक घोर को हों ॥

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भौतुबा और को हों ।

तुलसिदास सीतल नित यहि धस, बड़े ठेकाना और को हों ॥

निम्नांकित पंक्तियों में भी तुलसी की भक्ति-भावना का निर्मल रूप द्रष्टव्य है—

कबहुँ कृपा करि रघुवीर ! मोहूँ चित्त हो ।

सो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानि दयानिधि ।

अवगुन अमित बितेहो ॥

जनम जनम हौं भन जित्यो, अब मोहि जितेहो ।
 हौं सनाथ हूं हौं सही, तुमहें अनापति
 जो सघतहि न भितेहो ॥
 विनय करो अपमयहु तें, तुम्ह परम हितेहो ।
 सुससिदास कासों बहै ? तुमही सब मेरे
 प्रभु गुन मात पितेहो ।

निस्तब्धेह विनयपत्रिका में भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखार्ह देता है । यह विशेषता इस कृति को उत्कृष्टता की कोटि में पहुंचाने में पूर्ण सहायक है । भक्तों का कण्ठहार, ऐसा सुन्दर काव्य तुलसी जैसे अनन्य भक्त-कवि की वाणी का ही प्रसाद हो सकता है ।

(४) हृदय की निश्छलता एवं भाव-गाम्भीर्य

विनयपत्रिका की चौबीस विशेषता, जिसके कारण यह एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है, तुलसी के निश्छल हृदय से निःसृत निर्मल भावों की मंदाकिनी का यह अजस्र प्रवाह है जो हमें उसके प्रत्येक पद में मिलता है । कवि-हृदय की निष्पटता का गाम्भीर्य यदि वही देखना है, तो विनयपत्रिका में देखिए । एक-एक पंक्ति हृदय की भावाकुलता को देन है, कुछ उदाहरण देखिए—

(१) बहर्ह मन बिलाम न माग्यो ।

निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहें तहें इग्निन लाग्यो ॥
 जबपि विनय संग सट्यो दुसह दुख, विषम जाल अवभान्यो ।
 तबपि न तजत मूढ़, भमताबस, जानत हूं नहि जाग्यो ।
 जगम अनेक जिये नाना बिधि, कर्म-कोच बित लाग्यो ।
 होइ न विमल बिदेक नीर-बिनु ब्रेद पुरान बलान्यो ॥
 निज हित नाथ बिता गुन हरि सों हरपि हृदय नहि माग्यो ।
 सुससिदास बच लूया जाय सर सनतहि जनम तिराग्यो ॥

(२) ऐसी भूढ़ता या मन की ।

परिहरि राम-भक्ति-सुरसरिता, आस करत ओसरन की ॥
 धूम-समूह निरलि खातक क्यों, लुपित छाति मति धन की ।
 नहि तहें सीतलता न आरि, पुनि हानि होत सोचन की ॥
 क्यों गच-बाँध बिसोकि सेन, जइ दाँह आपने तन की ।
 टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की ॥

कहे सों वहीँ कुचाल कुपानिधि, जानत हों गति जन की ।

सुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु साज निज पन की ॥

इन पदों में जिस प्रकार कवि-हृदय की निश्चलता एवं भाव-गाम्भीर्य द्रष्टव्य है, उसी प्रकार प्रत्येक पद निश्चल हृदय की गम्भीर भावाभिव्यक्ति युक्त है ।

(५) युग-जीवन की अभिव्यक्ति

विनयपत्रिका की पाँचवीं विशेषता यह है कि एक भक्ति-परक काव्य हो हुए भी उसमें सुलसी ने युग-जीवन की उपेक्षा नहीं की है । जहाँ एक ओर उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को परोक्षतः उसमें अभिव्यक्ति किया है, वही दूसरी ओर उन्होंने अपने युग के समाज की विभिन्न दशाओं पर भी दृष्टिपात किया है ।

उदाहरणार्थ वे सामाजिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

आत्म बरन धरम बिरहित जग, लोक बेव भरजाव गई है ।

प्रजा पतित पाखड़ पाप रत, अपने-अपने रंग रई है ॥

साति सत्य सुभरीति गई घटि; बड़ी कुरीति कपट कलई है ।

सीधल, साधु साधुता सोचति, खल बिलसति हुलसति खलई है ॥

इसी प्रकार राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है—

राज समाज कोटि कटु,

कल्पत कलुष कुचाल नई है ।

नीति प्रतीति प्रीति परिमिति,

रति हेतुवाद हठि हेरि हई है ।

(६) दार्शनिक विवादों का समाधान

सुलसी ने अपने युग के दार्शनिक विवादों का समाधान करने की भी 'विनयपत्रिका' में सफल चेष्टा की है । उन्होंने कवित्व को प्रधान रखते हुए दार्शनिक विचारों को बहुत संक्षेप में अत्यन्त सुलभे हुए ढङ्ग से प्रस्तुत किया है ।

उदाहरणार्थ—द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदि के झगड़ों का अन्त करते हुए वे लिखते हैं—

केराव, कहि न जाइ का कहिए ।

देखत मय समझा निर्मल मति नहि नहि ।

दुःख भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु तिला बिनेरे ।
 धोये मिटें न, मरे भीति, दुल पाइय इहि तनु हेरे ॥
 रबिकर-नोर बसे बति बादन, मकर रूप तेहि माहीं ।
 बदन-हीन सो प्रसे चराचर पान करन जे जाहीं ॥
 बोज बह ताय भूठ बह बोज, जुगल प्रबल बोज माने ।
 तुलसिदास परिहरें सोनि भ्रम, सो आपन पहिचाने ॥

वायु और दलों का जैसा अद्भुत सम्बन्ध इन पद में मिलता है, वैसा अग्यत्र दुर्लभ है। 'विनयपत्रिका' की ही यह विशेषता है कि उनमें ऐसे वाचि-पूर्ण वक्त्र से दार्शनिक विचारों का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

(७) लोक-मंगल की भावना

हर एक साम्य सोव-मङ्गल की भावना से अनुप्राणित नहीं होता। विनय-पत्रिका में आत्माभिप्रेयवित की प्रधानता होती है। हुए भी सोव-मङ्गल तरह पाया जाता है, यह उसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। मुलमी राम-मन्त्रि द्वारा अपना उद्धार तो चाहते ही हैं; साथ ही वे जीवमान के हिन्दू की भी सामना करते हैं। इसीलिए वे 'विनयपत्रिका' में बार-बार यह कहते हैं—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, जावरे ।
 घोर-भय-जीर-निधि नाम निज नाथ रे ।
 एक ही साधन सब रिडि तिडि लाधि रे ।
 घटे बलि-रोग-भोग सबस समाधि रे ॥

तथा—

राम राम राम जोहूँ जोलीं तू न खरिहै ।
 सीली तू बहूँ हो आय निहूँ ताय खरिहै ॥
 × × ×
 तुमनो निलोह, निहूँ बाल सोमे दीन को ।
 दामदाम ही को रनि जेसे दान दीन को ॥

(८) मद्रास प्रांत-प्राप्त्यर्थ एवं उत्पत्ति-वर्धन

विनयप्रतिष्ठा की काटती विशेषता है। हमने इच्छा करी की कि हमने यह-
बातों को एक दृष्टि-विशेष में। जिस बात को हमने कहें हमने हमने हमने
बातों है, उसे हमने बात-बताते के साथ हमने करते हैं। कि हमने हमने

काव्य-चमत्कार आ जाता है; उदाहरणार्थ—माता सीता की स्तुति करते हुए वे कितनी चतुराई से अपनी विनय राम तक पहुँचाना चाहते हैं—

कचहूँक अम्ब अवसतय पाइ ।

मेरिओ गुपि छाइयो, कछु करन-कषा चसाइ ॥

बोन सब अंगहीन छीन मलीन अधी अपाइ ।

नाम लं भरै उबर एक प्रभु-बासी-बास कहाइ ॥

यूभि हैं 'सो है कोन' कहियो नाम इसा जनाइ ।

गुनत राम कृपालु के मेरो बिगरिओ बनि जाइ ॥

जानकी जग-जननि जन की किये बचन सहाइ ।

तारै तुलसीदास भय सब-नाम-गुनगन गाइ ॥

भाव-गाम्भीर्य और वाक्-चातुर्य का ऐसा विचित्र समन्वय विनयपत्रिका की ही विशेषता है । उक्ति-वैचित्र्य का भी एक उदाहरण सीत्रिये—

तो हों धार-धार प्रभुहि पुकारिकं सिजावतो न,

जो वे मोको होतो कहैं ठाकुर-ठहव ।

(६) पाण्डित्य-पूर्ण भाषा

विनयपत्रिका की एक अन्य विशेषता यह भी है कि उसमें भाषा का पाण्डित्यपूर्ण रूप मिलता है । जैसे तो तुलसी की सभी कृतियों में अत्यन्त परि-
माजित तथा सहज-सुबोध भाषा मिलती है, परन्तु जैसा पाण्डित्य विनयपत्रिका की भाषा में पाया जाता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । यह इस कृति की एक बहुत बड़ी विशेषता है । किलष्ट-से-किलष्ट संस्कृत-गर्भित भाषा जहाँ इस पुस्तक में मिलती है, वहाँ सरल-से-सरल साहित्यिक भाषा का भी इसमें प्रयोग हुआ है । दोनों प्रकार की भाषा में उनका पाण्डित्य प्रकट होता है । विनय-
पत्रिका अपनी इस विशेषता के कारण तुलसी की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है । भाषा सम्बन्धी दो उदाहरण देखिए—

(१) जयति मगलाचार ससार भारापहर बानराकर बिग्रह पुरारी ।

राम-रोपानल-ज्वालाभासा-मिथ ध्यांतघर-सत्तम सहारकारी ॥

जयति मरुदजनामोद-मंदिर, नतधीव-सुधीव-कुलंक मन्धो ।

जातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध सूर-सज्जनानंद-सिन्धो ॥

(२) लाभ कहा गानुप-तनु पाये ।

काय-बचन-मन सपनेहुँ कचहूँक, घटत न काज परामे ॥

जो सुल सुखपुर मरक गेह बन, आवत विनहि सुताये ।
तेहि सुख कहें बहु अतन करत मन, समुझत नहि समुझाये ॥

(१०) सुन्दर कला-विधान

सुलसी ने विनयपत्रिका को अपनी भक्ति-तन्मयता में ओत-प्रोत करके भी उसे उल्लेखोक्ति की वाच्य-वृत्ता की कसौटी से गिरने नहीं दिया, वह भी उसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। उन्होंने इस कृति में सभी दृष्टियों से अत्यन्त सुन्दर कला-विधान प्रयुक्त किया है। 'विनयपत्रिका' भेजने के लिए विनय की एक पद्धति-विशेष अपनाते हुए उन्होंने प्रमुख देवताओं की स्तुति करके बड़े सुन्दर हम से राम-भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश किया है। फिर बड़ी कुशलता से भक्ति की मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए अपनी वातरता और आतुरतापूर्ण भाणी सुनाई है। एतदर्थ उन्होंने बड़ी प्रभावशाली रागात्मक शैली का प्रयोग किया है एवं अद्भुत असंसार-चातुर्य दिखलाया है। आलंकारिक पदावली के कठिण उदाहरण दृष्टव्य हैं—

(१) जाये यह-कमल सुख मुनि मधुकर बिरत जे,

परम सुपनिष्ठ सुभाहि न ।

(२) कछवि भग्न मनोरथ बिधि बस, सुल हृष्टत सुल पारि ।

सुलर सुसौल सुजान सुर सुनि, सुन्दर कोटिक बाम सो ।

(११) शान्त रस का अगाध सिन्धु

विनयपत्रिका की ग्यारहवीं विशेषता है उसके अन्दर शान्त रस की विनम्र अभिव्यक्ति। यही एक ऐसा रस है, जो जीव को अन्त में स्थिति देता है। विनयपत्रिका इस रस का अगाध सिन्धु है। अतः इस दृष्टि में भी यह वाच्य एक उल्लेख कृति मानी जाती है।

इससे वे, हम कह सकते हैं कि विनयपत्रिका सुलसी की एक ऐसी उल्लेख वाच्य कृति है, जो अनेक विशेषताओं से समलभ है तथा वाच्य-वृत्ता का एक खेपट रूप होने में कारण वाच्य-रसिकों एवं अर्थों का समान रूप में उल्लेख करती हुई है।

प्रश्न २६—विनयपत्रिका का उद्देश्य क्या है और इस कार्य में कवि को कहीं तक सफलता मिली है ?

उत्तर—वाच्य-रचना कभी भी निरर्थक नहीं होती। जो कवि विनम्र बहाना होता है, वह अपने ही बहाने उद्देश्य को लेकर वाच्य-रचना करता है।

तुलसी हिन्दी के एक सर्वाधिक लोकप्रिय एवं श्रेष्ठतम महाकवि हैं। अतः उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य भी उतना ही महान् है। उनकी प्रत्येक कृति लोकहित का ध्यान रखकर लिखी गई है। विनयपत्रिका एक आत्मामिथ्यक्ति-प्रधान काव्य है, परन्तु उसमें भी तुलसी का उतना ही महान् उद्देश्य छिपा हुआ है, जितना महान् उद्देश्य हमें उनकी अन्य रचनाओं में मिलता है। विनय-पत्रिका में आत्मामिथ्यक्ति की प्रधानता देखकर हम केवल उसे आत्मोद्धार की कामना से लिखा गया काव्य नहीं कह सकते। वस्तुतः उसमें कवि का अत्यन्त पवित्र तथा महान् उद्देश्य छिपा हुआ है। उस उद्देश्य की अभिव्यक्ति किस पद में नहीं हुई, अपितु सभी पदों में उसकी क्रमबद्ध योजना मिलती है।

तुलसी ने विनयपत्रिका में जीव के परमार्थ पर विस्तार से विचार किया है। उनका लक्ष्य है—उसे मोक्ष का मार्ग दिखलाना। वे लोक-हित की विद्याल भावना लेकर जागतिक जीवन के दुखादि का निरीक्षण करते हैं, उनके निवारण का उपाय सोचते हैं, विभिन्न विश्वासों और मतों का समन्वय करते हैं और फिर अन्तिम निष्कर्ष निकाल कर जीव-मात्र को राम-भक्ति का सरल सुन्दर पथ निर्दिष्ट करते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्येक पद में उनकी जो कातरता, आतुरता, विनम्रता एवं भक्ति-सन्मयता मिलती है, वह अपनी पीड़ा के कारण ही नहीं है, अपितु लोक-पीड़ा की व्यापक अनुभूति के कारण भी। इस अनुभूति का वैयक्तिक आधार तो यह है कि तुलसी कलियुग की कुचालों से परेशान थे, सत्तार में सर्वत्र स्वाधियों का जमघट दिखाई देता, कोई भी उन्हें पारमाधिक भावना से युक्त नजर नहीं आता। 'स्वारथ के साधिन्ह तयो' कहकर वे इसी ओर सकेत करते हैं और शायद इसीलिए वे राम के द्वार पर जा पड़ते हैं—

प्रन करि हों हठि आजु तैं राम-द्वार पर्यो हों ।

उन्हें अपनी मत्तीनता का पूर्ण ज्ञान है—

मानस मत्तीन, करतय कलिमल पीन,

जोहू न जप्यो नाम, बषयो आउ-बाउ में ।

कुपय कुचाल चल्थो, भयो न मूलिहूँ भलो,

बाल बसा हूँ न सेल्थो खेतत सुबाउँ में ॥

वे राम की शरण में इसीलिए गए हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने कान में
 तब का 'सुदेश' सुन लिया है—

पाहि पाहि राम ! पाहि, रामचन्द्र रामचन्द्र
 मुजस खसन सुनि आयो हौ सरन ।

अतः राम की शरण में आने के लिए तुलसी ने 'विनयपत्रिका' लिखी है,
 यह उसके वैयक्तिक पक्ष को लेकर कहा जा सकता है । वे राम को अपनी
 विनय सुनाना चाहते हैं, इसीलिए उन्होंने अपनी समस्त भावनाओं को विनय-
 पत्रिका का रूप दिया है, किन्तु इस वैयक्तिकता के पीछे तुलसी का लोक-
 हित सम्बन्धी जो दृष्टिकोण निहित है, वही विनयपत्रिका की रचना का एक
 महान् उद्देश्य है । वे अपनी भावनाओं को लोक की भावना का रूप देकर
 मूल की भावना से प्रभावित होते हैं और उसी की 'विनयपत्रिका' में विस्तार
 से अभिव्यक्ति करते हैं । वे मनुष्य-शरीर की साधकता इसी में मानते हैं कि
 उसको प्राप्त करके जीव परोपकार करे—

नाम बड़ा नरतनु धरि सारूपी ।

पर-उपकार सार सृति को जो सो धोतिहु न बिचारूपी ॥

ईत मूल, भय मूल, सोक फल, भवतव टरै न टारूपी ।

रामभयम-सोदन कुठार लै सो नहि काटि निवारूपी ॥

वे अपना वस्त्राण-मात्र नहीं चाहते, अपितु सत्कार भर की वस्त्राण का
 कार्य दिखाने के लिए अधीर हैं । यह अधीरता उनकी परहित की एक स्थायी
 भावना पर आधारित है । वे बार-बार यह अभिलाषा करते हैं—

तेहि लहु केर एक पल बीजं पर उपकार ।

×

×

×

परहित निरत सो पारन बहुरि न ध्यायत सोक ।

यही परहितान्विताया उन्हें बार-बार जीव की राम-सक्ति के प्रति उन्मुख
 करने की बाध्य करती है । वे आर्थिक ओषों को सचेत करते हैं—

जागु-जागु ओष बड़ । ओहै जय-जामिनी ।

बेह-बेह-बेह जानि बंस धन-जामिनी ॥

होवै सपनेहुँ सहे समृति संताप रे,

हूँसो मृग बारि, जानो बेबरी को सौं रे ॥

वे राम की अनन्य-भक्ति का प्रचार करके जीव को मोक्ष का विशुद्ध मार्ग दिखाना चाहते हैं । वे जीवों को राय देते हैं—

जाके प्रिय न राम-बंदेही ।

सो छाँड़िये कोटि बंदी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।

बलि गुरु सज्यो, बंत्त ब्रज-बनितनि, भये सुख मगलकारी ॥

माते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ सौ ।

भजन कहा भाँखि जेहि फूटै, बहुत तक कहों कहीं सौ ॥

सुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो ।

जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

सुलसी का मुख्य उद्देश्य है—जागतिक जीवों के हित के लिए राम-भक्ति में उनकी प्रीति बढ़ाना । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने बनेक उपायों का प्रयोग किया है । कभी तो वे कहते हैं—

जो पै रहिनि राम सो माहीं ।

सौ नर खर कूकर सूकर सम, ब्या जियत जग माहीं ॥

काम, क्रोध, मद, सोभ, मोद, भय, मूल, प्यास सबहो के ।

मनुज वेह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिध-पी के ॥

सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गन गदआई ।

बिनु हरिभजन ईनाशन के फल तजत मही कदआई ॥

कीरति, कुल, करतूति, भूलि भलि, सोल, सरूप सलोने ।

सुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सासन साग भलोने ॥

और भी कहते हैं—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने ।

प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत घरन बिराने ॥

जे जड़ जीव कुटिल कायर छल, केवल कलि-भलि साने ।

सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक कर माने ॥

सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पायें पिराने ।

साया मलीन पंथ के मल ज्यों, कबहुँ न हृदय पिराने ॥

पह दोनता दूर करिबे को, अमित जतन उर माने ।

सुलसी चित चित न मिटै, बिनु चितामनि पहिचाने ॥

उन्होंने कहा अपनी दीनता दिखाई है और आत्म-ग्लानि का प्रदर्शन किया, यही भी वे सोच-विचार की कामना को भूल नहीं हैं। वे अपनी सुराहियों की गलतियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए स्वयं को जायतिक जीवों का प्रतिनिधि मानते प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनकी वेदना और पीड़ा विश्व की पीड़ा और पीड़ा जल गई है। जहाँ वे यह कहते हैं—

गुण मन पुन । तिलाचन मेरो ।

हरिहर-विमुख सहो न बाहु सुख, सठ । यह समुल्लिखे मेरो ।

बिहारे सति रवि मन-मननि तें, पावत दुख बहुतेरो ॥

×

×

×

हृद न विपति भजे बिनु रघुपति, सुत सनेहु निबेरो ।

दुर्लभास अल आल दाहि कर, होहु राम कर मेरो ॥

यहाँ हमें उनकी बीना में हर एक जीव अपने मन की समझता प्रतीत होता है। बाबू, तुमही अपने हृदय की बाणी को जगद् की बाणी कर कर देना चाहते हैं और इस काम में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। उन्होंने जहाँ यह भावना व्यक्त की है कि—

बहुतेर ही यहि रहनि रह्यो ।

भी रघुनाथ-बुधानु कृपा तें, लन-सुभाव गह्यो ॥

बरा भाव लगेव सदा, बाहु सी कृपा न कह्यो ।

बहिन निरत निरन्तर मन-बल-अचल मेव निबह्यो ॥

बाबू बचन भाति हुतहु लखन लुनि, तेहि पावत न कह्यो ।

विपत बाव, सम सोनल मन, पर पुन, यहि सोव कह्यो ॥

बहिन देह-अद्वय बिम्बा, दुख-सुख लखहुनि कह्यो ।

दुर्लभास कहु यहि बच यहि, अविचल-हृति-भक्ति कह्यो ॥

यहाँ हमें हर जीव की स्थिति की ओर दृष्टि आत्म-प्राप्त का पावन रूप दृष्टि-रूप ही कहना है। ऐसा कहना है, यानी हर एक जीव तुमही के शब्दों में बाबू, तुमही अद्वय हृति-अद्वय की दावना कर रहा है। इस प्रकार उन्होंने बाबू हर राम, राम की प्रार्थना और प्रतीक—दोनों ही करों में अपनी प्रार्थना के लिए विचार किया है कि उनसे यही की विचित्रता का विचित्रता का कारण भी विचार ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तुलसी की भक्ति-भावना सोच-कल्पनामय है और वह उनकी व्यक्तिगत व्यापक और वेदना की भूमि से उठकर समस्त विश्व की पीड़ा का एक धारण करने के लिए आगे बढ़ी है। अतः तुलसी ने जगत् के जो बड़े अनुभव किए थे, उनकी अभिव्यक्ति भी विनयपत्रिका की रचना का गोल उद्देश्य बन गया है। अतः यह कहना सत्य ही है कि "अनो दारिद्र्य-पूर्ण, कष्ट, अमहाय, निरनाथ दशा को सैतानी-बद करके भगवान् की कृपावशा ही 'विनयपत्रिका' का मूल आशय है। यह दशा युग के प्रतिनिधि सत्तुलसीदास की है, इसीलिए परोक्ष रूप से सार्वजनिक है। अतः विनयपत्रिका की ढेर में एकरस में अनेकत्व प्रदर्शित करने की शक्ति है और भिन्नत्व में अभिन्नत्व उत्पन्न करने की शक्तता। वस्तुतः विनयपत्रिका के प्रयोजन में मोक्षवासी जी को अपनी दुख-नापायों अथवा पीड़ाओं का संप्रहृद अपेक्षित नहीं है, बरन् उसमें सर्वजन के दुःखों, लोक की पीड़ाओं तथा यातनाओं के विशद विवरण की भावना अन्तर्निहित है।"

सारांश रूप में अन्त में यही कहा जा सकता है कि तुलसी ने विनयपत्रिका ॥ लोक की वेदना को अपनी वेदना बनाकर व्यक्त किया है। ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य है—लोक-जीवन में आनन्द का वातावरण पैदा कर भक्ति के मार्ग से जागतिक जीवों को मोक्षवासी बनाना। तुलसी ने विनयपत्रिका में भगवान् राम की अगम्य भक्ति की, एतदर्थ विस्तार से अभिव्यक्ति की है।

प्रश्न २७—'विनयपत्रिका' में तुलसी की जो भक्ति-भावना व्यक्त हुई है, उसकी 'अमरगीत' के रचयिता सूर की भक्ति-भावना ॥ संक्षेप में तुलना कीजिए।

उत्तर—तुलसी और सूर—दोनों ही भक्त-कवि थे। दोनों ने क्रमशः राम और कृष्ण को आराध्य मानकर काव्य-रचना की है। दोनों भगवान् के निर्गुण रूप में भी विश्वास करते थे, किन्तु भक्ति के लिए वे सगुण ईश्वर को ही स्वीकार करते थे। राम और कृष्ण को दोनों कवियों ने उसी ईश्वर का सीता-वतार माना था। उनकी दृष्टि में जो ब्रह्म अव्यय, अनादि, अकाल और निर्गुण है, वही जब सीता करना चाहता है, सब पराधाम पर अवतीर्ण होता है। ब्रह्म की सबसे बड़ी सीता तो समस्त अङ्ग-प्रेतजनमय सृष्टि है, जो उसी के विराट् रूप की अभिव्यक्ति है। इसी सृष्टि में जब सब बड़ जाते हैं अब वह ब्रह्म अवतार लेकर पापात्माओं का संहार करता है।

मीनों यदि ऐसे ही सीसावतारी ब्रह्म के उपासक हैं, क्योंकि वह साकार होने के कारण भक्ति द्वारा प्राप्य है; साथ ही उसका एक लोक मङ्गलकारी रूप भी है। जन. दोनों कवियों का उपास्य 'ब्रह्म' का ऐसा रूप है, जिसकी प्राप्ति में दोनों ने स्वार्थ एवं परार्थ की पूर्ति का दर्शन किया है।

मुलसी ने दिनपत्रिका की रचना करके अपने आराध्य भगवान् राम की कवियुग के विरह शिवायन सुनाई। स्वयं तो कलि की यातनाओं से पीड़ित ही है, साथ ही वे लोक-जीवन की पीड़ा का भी अनुभव कर रहे हैं। अतः सभी देवताओं को प्रपन्न करते हुए वे राम के दरबार में अपना प्रार्थना-पत्र से पढ़ते हैं, वहाँ पढ़ते हुए वे विभिन्न प्रकार से आत्म-हीनता, आत्म-ग्लानि, आत्म-व्यथा आदि का वर्णन करते हैं, अपने पय-घट्ट होने का कारण भी बताते हैं और फिर अपनी अनन्य-भक्ति का परिचय देने हुए अपने आराध्य से अनन्य भक्ति की याचना करके मोटा बोल आशा करते हैं। वे अनेक देवताओं की स्तुति करते हुए राम की कारण से पढ़ते हैं, किन्तु वे देवता उनके उपास्य नहीं हैं, उपास्य तो एकमात्र राम हैं। उन्होंने प्रत्येक देवता से भी राम की भक्ति की याचना की है। इस प्रकार मुलसी की भक्ति-माधना का एक अनिश्चित रूप मिलता है। उनकी भक्ति में मानव की अनन्यता का आदर्श निहित है; वे कहते हैं—

राम राम रहु, राम राम रहु, राम राम जगु मोहा ।
रामनाम-मन्त्रेह मेह को, मन । हठि होहि पसीहा ॥
सब साधन-जन रूप-सरित-सर-सागर-सन्निह निरासा ।
रामनाम-वति हयानि-सुधा भूम-सौकर प्रेम निदासा ॥
गरदि-तरजि पापान करवि बनि, प्रीति परति जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उभेग उर, पर परनिनि रक्षाई ॥
रामनाम-गति रामनाम-मनि, रामनाम-अनुरादी ।
हैं गते हैं, जे होहिये, जिसुख लेइ मनिन कमाने ॥
एक संत जग अणम नवन कर, दिनभू न दिन-दिन दहै ।
मुलसी हिन छपनी हिसि, निरन्ध्रि मेम निहै ॥

पूर के 'प्रमस्वीन' की रचना एवं विचार को लेकर भी है। यह निराद है—निरादर और मायावी की उदात्तता का। वे निर्दुःख-निरादर हैं निरादर करते हुए भी उसे खिन्न द्वारा दण्ड नहीं मानते। जो ब्रह्म ब्रह्मण और

अनादि है वही उनकी दृष्टि में अमरतार सेना है। ब्रह्मसाधारण के मतानुसार वह ब्रह्म साधारणार्थ का 'आध्यात्मिक ब्रह्म' नहीं, अपितु उससे भी एक थोड़ी उ०प आधिदैविक ब्रह्म है, जो 'सच्चिदानन्द' कहलाता है। वह सीता की इच्छा से अपनी शक्ति के द्वारा 'सत्' रूप जगत्, एवं 'सत् विद्' रूप जीव की उत्पत्ति करता है। वह स्वयं सत्, विद् एवं आनन्दमय होने के कारण गोलोक में मुक्ताःशार्माओं के साथ सीमा-विहार करता है। पराधाम पर गोकुल उसका गोमोक, गोपियाँ मुक्त बीवारमाएँ तथा श्रीकृष्ण उसी ब्रह्म के सीमावतार हैं। अतः गोकुल में की गई श्रीकृष्ण की जो सीमाएँ हैं, वे उसी ब्रह्म की सीमाएँ हैं।

इस प्रकार वह आधिदैविक ब्रह्म ज्ञान और योग के द्वारा प्राप्य नहीं है, अपितु प्रेम और भक्ति के द्वारा प्राप्य है। यही विवाद का वह अन्त है, जो भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य विषय है। इस प्रकार सूर ने 'भ्रमरगीत' में केवल भक्ति-भावना की ही अभिव्यक्ति नहीं की है, भक्ति के महत्त्व एवं मार्ग का भी प्रतिपादन किया है। उनके भ्रमरगीत का यह सिद्धान्त-पक्ष इतना स्पष्ट है कि भावना-पक्ष से अधिक प्रबल हो गया है। तुलसी की विनयपत्रिका में सूर के समान किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन का आग्रह दिखाई नहीं देता; वे भक्ति के जिस मार्ग पर चल रहे हैं, उस पर उनको अपनी अटलता है और वही परोक्षतः उनका सिद्धान्त-पक्ष है। इस प्रकार की स्पष्ट उक्तियाँ होने 'भ्रमरगीतसार' में तो अनेक मिलती हैं; किन्तु 'विनयपत्रिका' में एक भी नहीं—

हमारे कौन जोग व्रत साथे ?

मृगत्वक्ष, भस्म, अघारि, जटा को, को इतनो अवसार्थे ॥

जाकी कहें चाह नहिँ वैए, अगम अपार अगार्थे ।

निरिधर सास छबीले मुख पर, इते बाँध को बाँधे ?

आसन पवन बिभूति मृगछात्ता, ध्याननि को अपरार्थे ?

सूरदास मानिक परिहरि कै, राख याँठि को बाँधे ?

सूर की भक्ति-भावना में जहाँ ज्ञान का स्पष्टतः विरोध मिलता है, वहाँ तुलसी ने ज्ञान को अपनी भक्ति-भावना में प्रमुख स्थान दिया है। वे कहते हैं कि जब तक जीव को अपनी तथा जगत् की स्थिति का ज्ञान नहीं होता, तब

तक वह भक्ति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता । इसीलिए ये बार-बार जीव को शान का आश्रय देने को कहते हैं—

जागु जागु जीव जड़ ! जोहै जग जामिनी ।
बेह नेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपनेहुँ सहै संसृति सताप रे ।
बूझ्यो मृग चारि, छायो जेबरी को ताप रे ॥

तथा—

जय नभवाटिका रही है फल वृत्ति रे ।
धुवाँ के से घोरहर देखि भू न भ्रुति रे ॥

किन्तु यह शानावस्था श्री तुलसी के मतानुसार जीव को तभी प्राप्त होनी है, जबकि उस पर ईश्वर की कृपा होनी है । इसीलिए उन्होंने कहा है—

हे हरि, वस न हरहु भ्रम भारी ।

अद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहि कृपा तुम्हारी ॥

वस्तुतः मूर और तुलसी की भक्ति-भावना का यह आध्यात्मिक अन्तर उनके दार्शनिक विश्वासों की भिन्नता के कारण है । तुलसी ने मन्दूराचार्य के माया-वाद पर किसी सीमा तक विश्वास रिया है, किन्तु मूर उसके एकदम विरोधी हैं । तुलसी ने अहाँ विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के निष्पक्ष पर अपनी भक्ति-भावना का रूप निर्धारित किया है, वहीं मूर ॥ ब्रह्मभाचार्य के पुष्टि-सिद्धान्त की मान्यता प्रधान है । इसीलिए मूर के लिए मोक्ष ही मोक्ष है, परन्तु तुलसी के लिए मोक्ष तो वश, सम्पन्न अर्थ मिथ्या है । अतः जिस प्रकार मूर ने मोक्ष-भाव की भक्ति को दृष्टिकार किया है तथा स्वयं-भाव की विनयावली प्रस्तुत की है, वही भक्ति-भावना तुलसी में नहीं है । मूर में यदि प्रेम की प्रधानता है, तो तुलसी में सेवा की प्रधानता है । मूर यदि भक्ति के क्षेत्र में आत्म-विस्मृति को प्रधानता देने हैं, तो तुलसी आत्म-बोध को । मूर में इसीलिए तुलसी जैसी अनन्यता नहीं है । और क्यों हो—मूर का अर्थ तो अद्वैत-मूर्ति प्राप्त होते हैं मोक्ष-विहारी के रूप अन्तर्गत सेवा करने का ही वास्तविकारी हो जाता है । वहीं न तो किसी प्रकार के मोक्ष की आवश्यकता है और न मर्त्यता की । यदि मोक्ष और मर्त्यता ही जेब रहे तो फिर मोक्ष-विहारी किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?—‘खेलत मे को बाबो कोहँदा ?’ तभी तो मूर

की गोपियाँ भक्ति करती हुई भी अपने धाराध्य कृष्ण को सने शरारतों
बुरी-भली बातें सुनाने का साहस कर लेती हैं, मनमाने उपासम्भ दे लेती हैं—

काहे को गोपीनाथ कहावत ?

जो ये मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न भावत ?

सपने की पहिचानि जानि कै हमहि कसक सपावत ।

जो ये श्याम कूबरी रोम्हे, सो किन नाम परावत ।

ज्यों गजराज काज के भीतर और बसन दियावत ?

कहन सुनन को हमहैं ऊषी सूर अस्त विरभावत ।

तुलसी की भक्ति-भावना में इस प्रकार के उपासम्भों के लिए कोई रण
नहीं है । वे अपने स्वामी को जो कुछ भी सुनाना चाहते हैं, वह वही शिवा
सथा निष्कपटता के साथ सुनाते हैं । वे अधिक-से-अधिक हाना ही
सकते हैं—

जाँउ जहाँ, ठीर है जहाँ देव । दुसित बीन को ?

को कृपासु स्वामी सारिसो रासै तारनागत

सब अंग बल-बिहीन को ॥

पनिहि गुनहि साहिब सहै सेब समीचीन को ।

अपन अगुन, आलसिनको पातिबो

कविआपरे रघुनाथक महीन को ॥

मुस कै कहा जहाँ ? निवित है जो की प्रभु प्रचीन को ।

तिहूँ काल, तिहूँ लोक में एक देक राखी

तुलसी से मन मनीन को ॥

सूर में दास्य-भाव की मर्यादा का अभाव होने के कारण ही उनमें ईश्वर,
विनय, मर्यादा एवं भीम का अभाव है, जिसका तुलसी की भक्ति भावना में
आधार है । इसीलिए जहाँ सूर की भक्ति-भावना में अभाव की परिधि है
वहीं-वहीं विगुण शोचिका का भी स्थान कर उठी है, वही तुलसी की भक्ति
भावना मान की परिधि में विगुण आश्लेषिका के बसावन पर प्रतिबिम्बित
दिखाई देती है । यदि ध्यान से देखा जाय तो तुलसी की भक्ति भावना की वह
विशेषता ही विनयविषय को अपनी का बलवत्ता बनाने का मुक्त कारण है,
अर्थात् सूर की भक्ति-भावना की पूर्ण विवेचना 'अवली' को देखने का
बंदहार बनाने का आवश्यक अर्थ अर्थक भाषा में अर्थक विषय है।

फेर भी यह तो मानना ही पड़ता है कि सूर की भक्ति में भावों की कामलता एवं दिव्य प्रेम से गद्गद् हृदय की सरसता अधिक है। तुलसी की विनयपत्रिका में निस्सन्देह ऐसे पदों का एक दम अभाव है—

नाहिन रह्यो मन में ठौर।

मंदनंदन अछन कैसे आनि ए उर और ?

घलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति ।

हृदय ते वह स्याम मुरति, छन न इस-उत जाति ।

बहत बया अनेक ऊयो, लोक लाभ दिलाय ।

बहा करौ मन प्रेम पुरन, घट न सिंगु समाय ।

स्यामगात शरोज-आनन, ललित अति हास ।

सूर ऐसे रूप कानन, मरत सोचन प्यास ।

तुलसी की भक्ति-भावना का रूप निखारने वाली पश्चात्ताप, वैश्य आदि की अनेक भावनाएँ हैं, जिनको विरतार से विनयपत्रिका में स्थान मिला है; यथा—

बबहूँ मन विलाम न माग्यो ।

नितिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, अहं तहें इगिन साग्यो ।

अदवि विषय संग सही दुसह दुख, विषम जाल अवभाग्यो ।

तदवि न तजत भूढ़, समताबस, जानत हूँ नहि आग्यो ॥

जन्म अनेक बिये नाग बिधि, बम-कीच बित साग्यो ।

होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु, बेद पुरान बलाग्यो ॥

मित्र हित नाथ विला गुच हरि सौं, हरवि हृदय नहि आग्यो ।

तुलसिदास जब तृषा जाय, सरसनतहि जनम तिराग्यो ॥

सूर की भ्रमरगीत में इस प्रकार के पश्चात्ताप, वैश्य आदि प्रकट करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। कारण भी स्पष्ट है, सूर की भक्ति में मन के विषय की बेसी आवश्यकता नहीं, जैसी आवश्यकता तुलसी की भक्ति-भावना में रही है। सूर की गोपियाँ तो सदा अपने मन के सटेज पर नाचती रहती हैं। परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि वह 'मन' ससारोन्मुखी न होकर 'ईश्वरोन्मुखी' हो चुका है। अनुराग तो वहाँ है, परन्तु वह अनुराग यदुः प्रति नहीं, अपितु सच्चिदानन्दायनाम भगवान् कीकृप्य के प्रति है। सूर की गोपियाँ ीकृप्य का निमिषेय भाव ही प्य देखती रहती हैं— १०

कधो ! अँजियाँ अति अनुरागी ।

इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहु पसक न लागी ॥

बिन पावस, पावस रितु आई, देखत ही बिदमान ।

अवधौ कहा कियो चाहत हो ? छाँड़हु नीरस ग्यान ॥

सुनु प्रिय सखा स्वामसुन्दर ॥ जानत सकल सुभाव ।

जैसे मिलें सूर प्रभु हम को, सो कछु करहु उपाय ॥

वस्तुतः सूर की भक्ति-भावना में यह मिलन-कामना ही प्रधान है । जीव-मोलोक-बिहारी के लीलानन्द से वंचित हो गया है । उसी की प्राप्ति के लिए छटपटा रहा है । अतः विरह को छटपटाहट सूर की भक्ति-भावना में प्रधान है । तुलसी ने ज्ञान से अपने राम को प्राप्त कर लिया है—पहचान लिया है परन्तु केवल प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है । मोक्ष पाने के लिए तो उसकी कृपा चाहिए, जिसकी उन्होंने बार-बार माँग की है—

जँसो हौं तँसो हौं राम ! राखरो जन जनि परिहरिये ।

कृपासिंधु कोसलपती सरनागत-पालक
हरनि आपनी हरिये ॥

हौं तो विगरालय शीर को, बिपरो न बिगरिये ।

सुम सुधारि आवे सखा सबको सप्रही बिधि
अब मेरीयो सुपरिये ॥

जग हँसिहै मेरे सप्रहे, कत इहि कर हरिये ।

कवि देवद कीन्हैं सखा जेहि सील सील सरल बिना
तेहि सुभाज अनुसरिये ॥

अरसाधी, तब आपनी सुलसी ल बिगारिये ।

दृष्टिओ बाँह गदे परे, कृतेहुँ बिनोचन
पीर होय हिन करिये ॥

सारंग यह है कि सूर और तुलसी की भक्ति-भावना ॥ मित्रांग तथा भाव, दोनों दृष्टियों से पर्याप्त अन्तर है । वस्तुतः तुलसी की भक्ति-भावना में एक सग्न का दृश्य बोध रहा है । सूर की भक्ति-भावना में दुःख का स्वर प्रधान है । तुलसी में शील, मदीय और ज्ञान की प्रधानता है, तो सूर में मोरच और प्रेम का आधिपत्य है । साधना और कोषणता की दृष्टि से अन्तरहीन-

सार' में व्यक्त अग्नि-भावना यदि शक्ति की वाणी है, तो दीप्ति, आनुराग एवं अन्वयना की दृष्टि में सुलसी की अग्नि-भावना अग्नो वा गात्रिण इव है। दोनों का अपने-अपने क्षेत्र में समान महत्त्व है।

प्रश्न २८—‘विनयपत्रिका में तुमको भी विद्यारण्या’ कीर्ति पर एक निबन्ध लिखिए :

उत्तर—तुमसीदास ने श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका, ब्रजवासी, शेषा-
वसी, श्रीकृष्ण गीतावसी, हरबं रामायण, जानकी मदन पार्वती मंगल आदि
जितने बाण्डों की रचना की है, उनमें उनकी 'विनयपत्रिका' का अत्यन्त महत्त्व-
पूर्ण स्थान है। इस कृति में उनकी पूर्ण बलि-रूप लाकार हुआ है। अनेक व्यभि-
चन जीवन की वेदना-भ्रष्टा की लोच की वेदना-भ्रष्टा के लक्ष्य एवम्भाना देकर
उन्होंने बलिभुग के विरह महाराजाधिराज मदवान् 'राम' के दरबार में अपनी
विनयपत्रिका भेजी है। उन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव दिया है, जो कुछ
देखा, सुना और समझा है तथा जो कुछ सोचा है उस सबकी 'विनयपत्रिका'
के पृष्ठों में लाकार कर दिया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका केवल
भानुबाना के हाथों में मिली हुई अविन के कावेर की अभिरुचि का वाक्य-वृत्ति-
मात्र नहीं है, अपितु उसमें उनके श्रीकृष्ण मन्त्रिण का विनय-पत्र की अत्यन्त
विस्तार से अभिरुचि हुआ है। इस उसमें तुमसी की 'श्रीरामचरितमानस' के
सामान राम-वचन के नाम में उद्धृत नहीं दाने, अतिसु सुन्दर काव्य-श्रम से
परकर कवियों का अनेक करने वाले जीहों की लोच-मदम कर और अनुभव
करके पूर्ण विरहाम के लक्ष्य राम-अविन का सुन्दर पद निर्दिष्ट करने वाले हैं।
यही कारण है कि आरम्भिक जीहों की उन्हें विनयपत्रिका की विस्तार वाक्य-
द्वारा एक ऐसी विचारधारा प्रदान की है जो उनके निम्न वाक्य-वृत्ति का
के उत्तर है। पूर्ण वाक्य-वृत्ति हो जाती है।

[illegible]

के गान के लिए ज्ञान आवश्यक है। जब तक जीव को ज्ञान नहीं होता, तब तक वह भ्रमात्मक जगज्जास में पड़ा विभिन्न दुःख भोगता रहता है। तुलसी ने अपने इन विचारों को विनयपत्रिका के अनेक पदों में व्यक्त किया है; यथा—
 जीव हरि से पृथक् होकर जगत को अपना समझ बैठा है, यही उसके दुःख का मूल कारण है—

जिय जब तैं हरि तैं बिसराग्यो ।

तब तैं देह मेह निज आग्यो ॥

मायाबस स्वरूप बिसराग्यो ।

तेहि भ्रम तैं दादन बुल पायो ॥

उसका यह दुःख-भोग—उसके भ्रम के ही कारण है। ये कहते हैं कि जीव इस तथ्य को नहीं जानता है कि वह आनन्द-सिन्धु-ब्रह्म के मध्य निवास करने वाला उसका एक अंग है, इसलिए वह प्यासा मरता है; दुःख भोगता है—

आनन्द सिन्धु-मध्य तब याता ।

बिनु जाने कत मरति पियासा ॥

× × ×

तिख झुलझ झुलझ झुलझ झुलझ

लल झूलि अब आयो तहाँ ॥

संसार तो पूर्णतः मिथ्या है, अतः उसमें जीव को विश्वास नहीं करना चाहिए—

जग नभवाटिका रही है कल-फूलि रे ।

धुवाँ के से धीर-हर देखि तु न झूलि रे ॥

माया ने जीव को इस मिथ्या जगत में भुसा दिया है, और इसीलि भयंकर दुःख भोगता है—

माया बस स्वरूप बिसराग्यो ।

तेहि भ्रम तैं दादन बुल पायो ॥

वस्तुतः जीव का जागतिक अस्तित्व माया के कारण ईश्वर से केवल इतना भिन्न है कि एक (जीव) माया के अधीन है और दूसरा (ईश्वर) माया का पति है—

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया ।

सुम मायापति, हौं बस माया ॥

तुलसी का विचार है कि यह माया तब तक जीव को नहीं छोड़ सकती; जब तक जीव को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। भक्ति उसका दूसरा माधन है; अर्थात् पहले ज्ञान हो फिर भक्ति में मन सने, तब जीव माया के जाल से छूट सकता है। परन्तु तुलसी का यह भी विचार है कि बिना हरि-कृपा के उस माया-भ्रम का नाश नहीं हो सकता—

ज्ञान भक्ति साधन अनेक, सब, सत्य, झूठ कष्टु नहीं ।

तुलसिदास हरि कृपा मिटे भ्रम, यह भरोस मम माहीं ॥

और यह हरि-कृपा प्राप्त करने के लिए मन का निर्विकार होता आवश्यक है, क्योंकि जिसका मन मलिन है वह राम से अनुराग नहीं कर सकता। बिना अनुराग किए 'हरिकृपा' प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए तुलसी का विचार है कि जीव को अपने मन का परिशीलन कर डालना चाहिए। यदि अपना मन निर्विकार हो जाय तो हितजन्य सांसारिक दुखों का अनुभव जीव को न हो—

जो भिन्न मन परिहर्ष विकारा ।

तुलसी का विचार है कि ऐसा तभी हो सकता है, जबकि प्रत्येक मनुष्य अपने मन को क्षण-क्षण पर सचेत करता रहे। उसे अपने मन को इस प्रकार बार-बार समझाते रहना चाहिए कि—

मन यदिनैह अवसर दीते ।

कुलंभ बेह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अब ही ते ॥

सहस्रबाहु इसबदन आहि शृंग, अवे न जाल बली ते ।

हम हम करि धन-धाम संबारे, अत बसे उडि रीते ॥

सुत बनिताहि जानि स्वारथरत, न बच भेट सबही ते ।

अंतहुं तोहि तज्ये पायरी । तु न तज्ये अबही ते ॥

अब मायहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जो ते ।

कुर्म न काम-अग्निनि तुलसी कह्ये, विषय-भोग कह्ये धो ते ॥

तुलसी का विचार है कि यह ससार अत्यन्त दुःखपूर्ण है तथा विभिन्न प्रकार के मिथ्या आशयों से भरा हुआ है। ईश्वर को प्राप्त करने के अनेक उत्तमनूपों मार्ग भल रहे हैं। जीव उनमें भटकता हुआ दुःख भोगता रहता है, तथा मुक्ति से दूर हटता जाता है। तुलसी का विचार है कि कतिपय में केवल राम की भक्ति इस दुःखपूर्ण ससार से मुक्ति दिना सकती है। लीले, वन, वर-

धास आदि करने से वे किसी को रोकते नहीं, परन्तु उनके विचार में राम भरोसा करने वाला ही जल्दी मुक्ति पाता है। जो इस संसार-सागर को पार करना चाहता है, उसे तुलसी के विचार से राम-नाम रूपी जलपान पर सारा हो जाना चाहिए। वे कहते हैं—

नाहिन आवत आन भरोसो ।

यहि कलिकाल सकल साधनतरु है खम-फलनि फरो सो ।

तप, तोरय, उपवास, दान, मल, जेहि जो ह्वं करो सो ।

पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि-भारि वेद परोसो ॥

आयस-विधि जप आग करत नर, सरत न काज सरो सो ।

सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग-विद्योग परो सो ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ध्यान विराग हरो सो ।

बिगरत मन सग्यास सेत जल नावत आम परो सो ॥

✓ यह मत सुनि यह पय पुराननि जहाँ तहाँ भगरो सो ।

गुह कह्यो राम भजन नीको मोहि लागत राज डगरो सो ॥

तुलसी बिनु परितोति प्रीति फिर-फिर पछि मरि मरो सो ।

रामनाम बोहित भव-सागर पातै तरन सरो सो ॥

तुलसी कलियुग में राम के नाम को ब्रह्मवृक्ष के समान मानते हैं, वे कहते हैं—

बलि नाम कामतरु राम को ।

दलनिहार कारिख बुकाल बुल, बीव घोर घन घाम को ॥

नाम तेन बाहिनी होत मन, काम विधात काम को ।

बहत मुनीस महेश भट्टानम, जतटे सुपे नाम को ॥

भसो लोह-वरलोक ताम्रु जाके जय ललित ललाम को ।

तुलसी जग आनिपन नाम ते लोचन बृष भुक्त को ॥

तुलसी का विचार है कि मनुष्य को किसी के प्रति भी धृष्टा रक्षित नहीं होना चाहिए; किन्तु विश्वास एक 'राम' पर ही करना चाहिए। संसार में विभिन्न देवी देवताओं को भी धृष्टा के गुण बलि करके चाहिए, परन्तु ब्रह्मोन्माद की वामना केवल राम में ही करना चाहिए। तुलसी ने अपने इन विचारों को विभिन्न देवों की स्तुति में प्रकट किया है। उन्नीस विनी भी देवता की मति नहीं की, राम के चरण में भक्ति है, उनमें केवल बड़ी भावना की

है। इसका कारण यह है कि वे राम की देवी का भी आराध्य मानते हैं। शिवजी की उन्होंने सबसे बड़ा दानी बनसाया है—'दानी बहुतें शंकर सम नाही', फिर भी उन्होंने 'राम' की ही भक्ति उनसे भी मानी है, क्योंकि उनके विचार से वे भी राम की भक्ति करने ही समर्थ दानी बने हैं। तुलसीदास का विचार है कि हमें ईश्वर की एक सत्ता में विश्वास करते हुए सभी मतों का समन्वय कर हरि-भक्ति के पथ पर अग्रसर रहना चाहिए, खण्डन-मण्डन के बचकर मे पढ़कर अपने भक्तिमार्ग से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए। भक्त के मन की तुलसी के विचार से यह अवस्था अत्यावश्यक है—

बचटुंरु हो यहि रहनि रहोंगो ।

धी रघुनाथ-हृषासु-हृषा से सतु-सुभाव गहोंगो ॥

अपासाभ सतोय सदा, काहू सो कछु न धहोंगो ।

परहित-निरत निरन्तर मन कम बचन मेव निबहोंगो ॥

परय बचन अति दुसह सचन सुनि तेहि पावक न बहोंगो ।

बिगत मान, सम सोतस मन, पर-गुन, नहि दोष कहोंगो

परि हरि देह-जनित चिन्ता, दुख-मुख समशुद्धि सहोंगो ।

तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति सहोंगो ॥

हरि-भक्ति प्राप्त करने वाले श्वशित की तुलसी के विचार हैं जगत के समस्त जीवों में सम-भाव रखना चाहिए और इसके लिए उसे सदा पर-हित के कार्यों में लीन होना चाहिए। वे कहते हैं कि यदि मानव-शरीर प्राप्त करके परोपकार नहीं किया तो उसका जीवन व्यर्थ ही समझिए—

काज कहा नर तनुपरि सारुयो ।

पर-उपकार सार खुति को जो सो पोखेहु न बिचारुयो ।

उनका विचार है कि परोपकार जीवन का सबसे बड़ा फल है—

सार्त सप्तधनु निमित्त तनु करिय बिचार ।

तेहि तनुकेर एक फल कीजे पर उपकार ॥

×

×

×

परहित-निरत सो वारन बहुरि न व्यापत सोक ।

तुलसी का विचार है कि मनुष्य को अपने शरीर को कुछ समझना चाहिए तथा परोपकार करते हुए किसी मत-मनान्तर के भ्रम में न पड़कर राम-भक्ति करनी चाहिए। उनके विचार से मनुष्य के बोहे-से अभावधान होने

ऐसो को उबार जग माहीं ।

विनु सेवा जो ब्रवं दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति भोग बिराग जतन करि नहि पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीय सखी कहें प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो सपति दस सोस धरपि करि रावन सिख पहुँ सीन्हों ।
सो सपदा विभीषन कहें अति सकुच-सहित हरि दीन्हों ॥
तुलतिदास सब भाति सकल सुख जो चाहसि मत मेरो ।
तो भुजु राम, काम सब पूरन करं कृपानिधि तेरो ॥

विषय—तुलसी ने अपने भक्ति-भावों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रमुख देवताओं, गंगा, यमुना, काली, विश्वकूट, भरत, शत्रुघ्न तथा सीता राम की स्तुति की 'विनयपत्रिका' की विषय-वस्तु में सम्मिलित किया है। उसमें हमें प्रारम्भ से अन्त तक भावों के विकास का एक क्रम मिलता है। श्रीराम की अवतार-कथा भी संक्षेप में कहीं-कहीं स्थान पा गई है। परन्तु यह सब होते हुए भी 'विनयपत्रिका' एक मुक्तक काव्य ही है। एक आवेदन-पत्रिका के समस्त विधान का अनुसरण करके भी तुलसी ने उसमें अपने हृदय के भावों को मुक्तक रूप में ही व्यक्त किया है, किसी कथा का सहारा नहीं लिया। वे कलिपुत्र से पीड़ित होकर राम के दरबार में अपनी विनयपत्रिका प्रेषित करते हैं और उसी में उन्होंने अपने उन सब भावों को लिख दिया है, जिनकी चर्पा पीछे की जा चुकी है। इस प्रकार तुलसी के पास अभिव्यक्त करने के लिए जो भाव हैं, उनको उन्होंने एक सुन्दर विषय का रूप भी दिया है, जो विनय की पत्रिका का आकार ग्रहण कर पाठकों का कण्ठहार बन गया है।

नायक—काव्य में कवि अपनी कला की योजना जिस उद्देश्य से करता है, उसका भोक्ता कोई नायक भी उसे प्रस्तुत करना पड़ता है। वस्तुतः प्रबन्ध-काव्य में जो नायक होता है वह कथावस्तु को लेकर चलता है और वही उसके फल का भोक्ता भी होता है। परन्तु मुक्तक काव्य में, जिसमें भावों की प्रधानता होती है, भावों को लेकर चलने वाला कवि स्वयं होता है और वही उसका भोक्ता होता है। विनयपत्रिका में भी हमें ऐसे नायक का अभाव नहीं मिलता। तुलसी स्वयं अपनी भाव-गंगा के भगीरथ हैं और वे ही उसके भक्तिफल के भोक्ता भी हैं। उन्हें हम काव्य के प्रारम्भ में तिडि-दाता गणेश से राम-भक्ति की याचना करते देखते हैं—

गाइये गनपति जगमन्दन । सकर-मुखन-भवानी-मन्दन ॥
 सिद्धि-सरन, यज्ञहदन विनायक । कृपा-सिधु, सुन्दर सम लायक ॥
 मोरक-प्रिय मुद - मगल-वाता । विद्या-वारिधि, बुद्धि विधाता ॥
 माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहि रामसिय मानस मोरे ॥

और मध्य में अनेक पदों में राम के पास पड़ूँ, इस प्रकार धिनय करते हुए पाठे हैं—

हों सब बिधि राम, राखरो चाहत भयो खेरो ।
 ठौर ठौर साहिबो होत है रयाल काल कलि केरो ॥
 काल-कर्म-दुन्दिय-विषय पाहकपन खेरो ।
 हीन बबुनस, बाँधि कं मोल करत करेरो ॥
 बन्दि-दोर तेरो नाम है विशईत खेरो ।
 मैं बह्यो तब छल-प्रोति कं माँगि उर खेरो ॥
 नाम भोट भव लागि बच्यो मलजुग जग जेरो ।
 अय गरीब जन पोषिये पापयो न हेरो ॥
 जेहि कोतुक बक स्थान को प्रभु म्याव निवेरो ।
 तेहि कोतुक कहिये कृपालु 'तुलसी है मेरो ॥'

तथा अन्त में हम उन्हें अपनी भक्ति का फल भोगते भी देखते हैं । राम ने उनकी पत्रिका को पढ़कर उन्हें अपना लिया है, देखिए—

बिहंसि राम बह्यो 'साथ है सुधि मैं हूँ सहो है ।'
 मुदित भाष जावत बनी तुलसी अनाथ बी,
 बरी रघुनाथ हाथ सहो है ।

मुक्कनक-बाध्यो में नायक का निर्वाह बहुत कम मिलता है । परन्तु तुलसी ने विनयपत्रिका के मुक्कनक शेष में भी इस सम्बन्ध में अपनी पूर्ण कला-कुशलता का परिचय दिया है ।

अन्तर्बाह्य प्रकृति

विनयपत्रिका में तुलसी ने मानव-स्वभाव के विभिन्न कर्षों का आत्म-ज्ञान आदि के द्वारा विस्तार में दिग्दर्शन कराया है । मनुष्य आन्धारावस्था, मोहन एवं बुझाया सा-धीकर और खेतकर को देता है, किन्तु जब उसे चेत होता है तब वह विभिन्न प्रकार से परचात्ताव करता है, आत्म-ज्ञान में दलता है तदा

ईश्वरोन्मुख होकर मोक्ष-कामना करता है
प्रकार निदर्शन करके मानव-प्रकृति को
कहते हैं—

खेतत-खात सरिकपन
बोवन शुचतिन

वे फिर कहते हैं—

ज्ञान-भवन मनु दियतु

सोख पाय न मै

अन्त में जब उन्हें बोध होता है, तब वे

तुलसिदास कासों कहें ? तुम

मेरे प्रभु गुन मा

और पश्यात्ताप करते हुए कह उठते हैं—

राग-द्वेष-ईर्ष्या-मत्त रची न सा

कहे न सुने न गुन रघुबर के भई

×

×

दासत ही गई नीति निता

कथहुं न नाथ मोद भो

बहिर्प्रकृति को प्रत्यक्षतः बहुत कम स्थान मि

मन्माकित पत्तिर्पा आलम्बन रूप में प्रकृति के

प्रकृति हैं—

सुचि भवनि सुहावनि आलया

कानन विविध, बारी

मन्माकिनि-मात्तिनी सदा सोव

बर यारि, विषम न

भाषा—विनयपत्रिका की भाषा अत्यन्त

स्कृत की तत्सम पदावली ल-सर

भाषा—

(क) विलष्ट भा

जत,

मुपरं मुग्धरं धीवरं, मदन-मन-मपनं सोन्दर्य-सोमातिरम्यं ।
 दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तव्यं, दुष्पार, ससारहर सुतम मृदुभाषणम् ॥

(स) सरस माया का उदाहरण—

बाहे वो पिरत झुड़ मन पायो ।

तजि हरिचरम-सारोज मुधा-रस, रविचर-जल लय सायो ॥

विजय देव मर अमुर धपार जय, जोनि सफल भूमिप्रायो ।

गृह बनिता सुत दायु भये बट्ट, दिन मानुग्राहि सायो ॥

सौसी

विनयपत्रिका में तुलसी ने सर्वत्र 'पद' की शैली का प्रयोग किया है ।
 शब्द पद राग-रागिनियों पर खरा उतरता है । उसमें उन्होंने शीत-मन्दों का
 भी बहुत समन्वय किया है । हम सभी वदों को मञ्जीर के बाद-य-नों पर
 ला सकते हैं और माधो का पूर्ण आनन्द ले सकते हैं । यह इस शक्ति की शैली
 की एक प्रशंसनीय विशेषता है जिससे हममें पर्याप्त रोचकता आ गई है ।

अलंकार-शोभना

विनयपत्रिका में तुलसी ने बहुत स्वाभाविक रूप में अलंकार-शोभना की
 है । भाषा और भाव—दोनों को उन्होंने अलंकार का प्रयोग करके शोभने
 प्रदान किया है । अर्थात् अलंकारों में उदात्त, रूपक, रूपान्तर, अतिशयोक्ति, मुग्ध-
 रस, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग अधिक हुआ है । अलंकार-शोभना में अलंकार
 का बाहुल्य है । कुछ अलंकारों के उदाहरण देखिए—

शारङ्गधर अलंकार—

, शीत पुरातन राज लख अलङ्कार लख निरख करेना रे ।

हमहि दिखत करि कुटिल करबबह कर कोन दिख होना रे ।

विषय बहार आह मरमारे अलङ्कार लख करेना रे ।

सख विनय अनेरा मनकल लखत सुख अलङ्कार रे ।

इस शैली में अलंकार और अलंकार शोभना का अलंकार लखना है ।

अलंकार के अलंकार अलंकार का अलंकार लखना है ।

शोभना अलंकार—

गुरुन बाध कुरु विनय करेना लख अलङ्कार लखना रे ।

अलंकार लख अलङ्कार लख अलङ्कार लख अलङ्कार रे ।

मुरं मुन्दरं धीवरं, भदन-भन-भयनं सौन्दर्य-सीमातिरम्यं ।
 दुःप्राप्य, दुःप्रेक्ष्य, दुःस्पर्शं, दुःस्पर्श, ससारहर सुतम मृदुभावमयं ॥

(ख) सरल भाषा का उदाहरण—

बाहे की छिरत मुह मन घायो ।

तत्रि हरिहरन-सरोज सुधा-रस, रसिकर-जल लय सायो ॥

प्रिय देख मर अतुर अपार जग, जोनि सबल भमिप्रायो ।

गृह बनिया सुन गगन भये बह, पित मातुग्रा हिमायो ॥

शैली

विनयप्रतिभा में सुलसी ने सर्वत्र 'पद' की शैली का प्रयोग किया है ।
 श्लोक पद शब्द-रामनियो पर सारा उतरता है । उसमें उग्रीने नीति-नर्यों का
 भी बहुत समय दिया है । हम सभी पदों को सद्गोत्र के बाट-पत्नी पर
 लाए हैं और माधो का पूर्ण आनन्द ले सके हैं । यह इस छंद की शैली
 की एक प्रशस्तनीय विशेषता है जिससे हममें पर्याप्त रोचकता आ गई है ।

अलङ्कार-योजना

विनयप्रतिभा में सुलसी ने बहुत सवाभाविता का प्रयोग अलङ्कार-योजना की
 है । भाषा और भाव—दोनों को उग्रीने अलङ्कार का प्रयोग करके सौन्दर्य
 प्रदान किया है । अलङ्कारों में उदात्त, कर्तव्य, लक्षण, भक्ति, लक्षण, लक्षण-
 विद्या, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग अधिक हुआ है । अलङ्कारों में बहुत
 का प्रयोग है । कुछ अलङ्कारों के उदाहरण दिए—

लक्षण-अलङ्कार—

, कील पुरान साज लख अलङ्कार करल विनोद अनेका है ।

हृदय दिव्य करि कृति करलकर अरु कोल विनोद अनेका है ।

विषय अलङ्कार अलङ्कार अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

अलङ्कार अनेका अनेका अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

हम देखेंगे कि अलङ्कार और अलङ्कार अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

अलङ्कार और अलङ्कार अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

अलङ्कार—

हृदय करल कृति करलकर अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

अलङ्कार और अलङ्कार अनेका अनेका अनेका अनेका है ।

जातद्वय मनि-जटित मनोहर, मूपुर जन-गुणबाई ।
 जनु हर-उर हरि विविध रूप परि, रहे खर भवन बनाई ॥
 कटितट रटति धार किकिन-रूप, अनुपम खरनि न आई ।
 हेम जलज-कल-कलिन-मध्य जनु मयुकर मुत्तर गुहाई ॥

X

X

X

गज-मनिमात बीच धाजत कहि जाति न पदक-निहाई ।

जनु उदुगन-मण्डल धारिखपर, नदप्रह रघी क्षयाई ॥

जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है, विनयपत्रिका की अलंकार-योजना में सर्वत्र भाव, भाषा एवं अलंकारों का अद्भुत साम्य मिलता है ।

रस

सभी उपकरणों का प्रयोग करके तुलसी ने 'निर्वेद' स्थायीभाव को रस-दशा को पहुँचाया है । यद्यपि हास्य वीर आदि अन्य रसों की भी यत्र-तत्र अमिश्रितता मिल जाती है, तथापि शांत रस प्रधान है । प्रारम्भ से अन्त तक विनयपत्रिका में शांत रस के अनुबल विभिन्न प्रकार की भाषा की योजना की गई है; एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

कमहुँक हौ यहि रहनि रहौगो ।

धीरघुनाय कृपासु कृपा तें, संत-सुभाव गहौगो ॥

अपलाभ संतोष सदा, काहूँ तौ कछु न चहौगो ।

परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-बचन नेम निबहौगो ॥

परप बचन अति सुमह सवन सुनि तेहि पायक न बहौगो ।

विगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, महि दोष बहौगो ॥

परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौगो ।

सुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविघल हरि भक्ति सहौगो ॥

उद्देश्य

काव्य के सभी उपकरणों का सहारा लेकर विनयपत्रिका को तुलसी ने एक सजीव कृति बना दिया है । कोई भी कला तब तक पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकती, जब तक वह किसी उद्देश्य की पूर्णता को प्राप्त न कर ले । 'कला को कला के लिए' मानने में भी कला का कोई उद्देश्य होता ही है । अतः प्रश्न यह रह जाता है कि—उसकी अभिव्यक्ति में कलाकार को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है । तुलसी ने विनयपत्रिका में आत्मोद्धार के साथ-साथ लोक-हित को भी

अपनी कला का उद्देश्य बनाया है और इस कार्य में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। जागतिक जीवों को हरि-भक्ति के सुन्दर सर्वोच्च सोपान पर आरोहण करा के अमर आनन्द का लाभ कराना—विनयपत्रिका का लोक-हित सम्बन्धी पक्ष है और अपने आराध्य 'राम' के प्रति अनन्य भक्ति का परिचय देते हुए आत्म-निवेदन करना—आत्मोद्धार सम्बन्धी पक्ष है। उनको अपने इन दोनों ही उद्देश्यों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रससत्ता मिली है।

निष्कर्ष यह है कि विनयपत्रिका बाध्य-वस्ता की बसीटी पर एक उल्लुप्ट कृति मिष्ट होती है। उसमें हमें तुलसी का कला-सम्बन्धी एक पूर्ण दृष्टिकोण अभिव्यक्त मिलता है। माव, भाषा, छन्द, अलङ्कार-योजना, अतिर्यास प्रकृति, रस, उद्देश्य आदि विभिन्न दृष्टियों से हम उसमें बहि की अद्भुत सफलता का दर्शन करते हैं। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य में 'विनयपत्रिका' का अत्यन्त उच्च स्थान है एक बाध्य-रसिक तथा भवन—दोनों उसे समान अभिव्यक्ति से पढ़ने हैं।

प्रश्न १०—'विनयपत्रिका' में तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का जो रूप उपलब्ध है, उसे आक्षेपवतानुसार उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—महाकवि तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा में 'धोरामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' दो ऐसे रत्न हिन्दी-साहित्य को प्रदान किए हैं, जिनकी तुलना में दृष्टने वाली बहुत कम रचनाएँ अभी तक देखने में आई हैं। इन दोनों ग्रन्थों में तुलसी ने जीवन का पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। बाध्य और जीवन का ऐसा समन्वय अत्यन्त दुर्लभ है। बलुन, तुलसी की समस्त कृति का एक प्रमुख कारण उनकी वह समन्वयात्मक प्रतिभा ही है जो उनकी कविता का प्राण है। 'धोरामचरितमानस' में तो हम जीवन के सभी मुख्य क्षेत्रों में समन्वय की बेहटा प्रतिष्ठा होते देखते हैं, किन्तु 'विनयपत्रिका' में भी समन्वयात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति का अभाव नहीं है। सामान्यतः हम उसमें तुलसी के समन्वय-सम्बन्धी दृष्टिकोण को निम्नांकित हीदों के अन्तर्गत समझ सकते हैं—

- (१) प्रकृति और मनुष्य की हिन्दो का समन्वय;
- (२) बाध्य और मङ्गल का समन्वय;
- (३) व्यक्ति और समाज का समन्वय;
- (४) भक्ति और दर्शन का समन्वय,

- (५) विभिन्न कार्यों का समन्वय;
- (६) आदर्श और यथार्थ का समन्वय;
- (७) वाक्य और जीवन का समन्वय तथा
- (८) साहित्यिक भाषा और जन-भाषा का समन्वय ।

(१) प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का समन्वय

तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का व्यापक रूप में समन्वय किया है। हम उसमें प्रारम्भ से अन्त तक प्रबन्ध-योजना भी पाते हैं और मुक्तक-योजना भी देखते हैं। पाठक अपनी रुचि के अनुकूल शैली में उनके आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। प्रबन्ध के अनुकूल तुलसी ने विनयपत्रिका को एक 'पत्र' के रूप में लिखा है जिसमें एक क्रमबद्ध भाव-योजना है। वे सबसे पहले गणेश जी की स्तुति के रूप में 'मंगलाचरण' लिखते हैं, फिर देवताओं की स्तुति द्वारा विषय-प्रवेश करते हैं और संक्षेप में प्रशंसा के साथ राम की अवतार-कथा लिखते हैं। तत्पश्चात् उनके सम्मुख उपस्थित होकर वे अपनी यथा सुनाते और उनकी कृपा की याचना करते हैं। अन्त में वे राम की कृपा पाकर कृत-वृत्त्य हो जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण पुस्तक को पढ़ने से प्रबन्ध जैसा आनन्द आता है। जब हम उनकी छन्द-योजना को देखते हैं और प्रत्येक छन्द एक-पृष्ठक पूर्ण भाव-सण्ड व्यक्त होते पाते हैं, तो स्पष्टतः उसमें मुक्तक काव्य का रूप दिखाई दे जाता है। यही है—तुलसी की प्रबन्ध और मुक्तक के समन्वय की वह अद्भुत प्रतिभा, जो 'विनयपत्रिका' में साकार हुई है।

२) काव्य और संगीत का समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका में दूसरा समन्वय 'काव्य और सङ्गीत' के क्षेत्र में किया है। जहाँ एक ओर उन्होंने भाव, भाषा, अभिव्यक्ति आदि की दृष्टियों उसमें विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है, वहाँ दूसरी ओर उसमें उनकी संगीतज्ञ की प्रतिभा भी प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक छन्द काव्य और सङ्गीत अद्भुत समन्वय का नमूना है। हम सभी पदों को किसी-न-किसी राग में गा सकते हैं। सामान्यतः काव्य की सरस भूमिका में तुलसी ने लयाण (पद २, ४), कान्हरा (पद २४, २०४), केवारा (४१, २१२), भैरवी (पद १६८), आसावरी (पद १८३), गोरी (पद ४५, १८६) आदि कई रागों का प्रयोग किया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका को पढ़कर जैसा रसा-आनन्द कर सकते हैं, ठीक वैसा ही आनन्द हम उसे रागों में गाकर भी प्राप्त

बेसाब बहि न साह का बहिये ।

बेसत तप रचना बिजिन मनि, समुभि मनहि मन रहिये ॥

गुन्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु गिरा पितेरे ।

घोषे मिटइ न, भरइ भीति, दुग पाइय इहि तनु हेरे ॥

रबिकर नीर बनं मनि बारन, मबर रूप तोहि माहो ।

बरन-होन सो प्रतं घराघर, पान बरन जे जाहो ॥

बोड रह ताप, भूड रह बोझ, कुपत प्रबत कोड मानं ।

सुनसिरात परिहरें तोनि भ्रम, सो आपन रहियानं ॥

(५) विभिन्न धारों का समन्वय

उपर्युक्त छन्द में अभिव्यक्त विचार जहाँ एक ओर कवि की भक्ति की दर्शन-गान्धारी समन्वयमय है, वहाँ दूसरी ओर हम उन विभिन्न धारों के समन्वय की चेष्टा भी प्रत्यक्षः स्वतः होते देखाते हैं । वस्तुतः तुलसी ने विनयपत्रिका में अनेक कवि पदों में तथा भावों एवं विचारों की योजना में भी विभिन्न धारों के समन्वय की अपनी चेष्टा प्रकट की है । अनेक देवताओं की स्तुति से जहाँ हम तुलसी में बहुदेववाद के प्रति धृष्टा देखते हैं, वहाँ उस सबसे एक 'राम' की ही भक्ति माँगने देकर हम उनको एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा में भी लक्ष्मी पाते हैं । वस्तुतः बड़ी कुशलता से, तुलसी ने बहुदेववाद एवं एकेश्वरवाद का समन्वय किया है । इसी प्रकार उन्होंने ईश्वर के सगुण और निर्गुण सम्बन्धी विचारों का भी समन्वय के आधार पर अन्त कर दिया है । दोनों ही रूपों में ईश्वर को देखते हैं और इस प्रकार विनयपत्रिका सगुणवाद एवं निर्गुणवाद के समन्वय की प्रतीक बन गयी है । समन्वय की भावना से प्रेरित होकर तुलसी कहते हैं—

अनय अविधि सवंग्य, सबैस, सतु, सबैतोभद बातासमाकं ।

प्रनतजन छेद-विच्छेद-विद्या-निपुन नीमि श्रीराम सोमित्र साकं ॥

(६) आदर्श और यथार्थ का समन्वय

प्रायः तुलसी के विरोधी आलोचक उन पर कोरा आदर्शवादी होने का आरोप लगाकर उन्हें जीवन की भूमि से दूर कर कल्पनाजीवी कवि बतलाते हैं परन्तु वास्तव में यह आरोप निराधार तथा पक्षपातपूर्ण है । विनयपत्रिका जैसी भक्ति-सम्बन्धी कृति में उन्होंने आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया है ।

एक ओर तो उन्होंने बहुत ऊँचे स्तर पर भगवान् राम के गुणों का आदर्श रूप में उद्घाटन किया है और दूसरी ओर उन्होंने जीव की व्यक्तिगत वेदना का उद्घाटन करके समाज की यथार्थ परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। निम्नांकित पंक्तियाँ तुलसी के यथार्थदर्शी उस दृष्टिकोण की सूचना देती हैं, जो अन्य पदों में अभिव्यक्त उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण के साथ समन्वय स्थापित करता है—

(अ) आत्मम बरन धरम बिरहित जग, लोभ-वेद भरजाव गई है।

प्रजा पतित पातक पाप रत, अपने-अपने रंग रई है।

सात सत्य सुभरोति गई घटि, बड़ी कुरोति कपट कसई है।

सीसत साधु साधुता सोचति, लल बिससित, हुससति असई है।

(ब) मेरे व्याह न करेछो जाति-पाति न सहत हों।

(स) फिर्यो ललात बिनु नाम उदर सगि कुलए कुलित मोहि हेरे।

(द) जाति के मुजाति के मुजाति के वेदगि बस—

साए दूक सबके बिदित बात सुनो सो।

(७) कार्य और जीवन का समन्वय

तुलसी ने दिनपत्रिका में कार्य की जीवन के मोर्चि और आध्यात्मिक पक्ष पर इस प्रकार भक्ति-भावना के साथ प्रस्तुत किया है कि स्वतः उसमें कार्य और जीवन का समन्वय उपस्थित हो गया है। उन्होंने प्रत्येक पद में जीवन की ऐसी अछूट चेतना भर दी है कि कार्य स्वतः जीवन बन गया है। जो सोच यह कहते हैं कि 'कला केवल कला के लिए है' उन्हें दिनपत्रिका पढ़कर अपनी राय बदलनी पड़ती है और यह कहना पड़ता है कि कानून कला जीवन के लिए है। जीवन और कार्य में विच्छेद नहीं।

दिनपत्रिका का कवि बिठनी सहज भावना के साथ कार्य की भूमि पर सर्व-स्वीकार जीवन की कामना करता है—

बहुरंग हो यह रहति रह्यो।

धीरधनाथ-धुपानु धृपा लें, संग सुखाय रह्यो।

अपाताम संतोष सदा, बाहू लों बछु न कह्यो।

परहित-निरत निरन्तर मन-बन-बचन केम निह्यो।

परप बचन अनि हुसह रखन सुनि, तेहि पादक न रह्यो।

दिएन धान, सम सोनल मन, पर दुन, नहि दोष कह्यो।

परिहरि बेह-अनित-चिन्ता, सुल-सुल समबुद्धि सहो गो ।
 तुलसीदास प्रभु यहि पष रहि, अविधल हरि भक्ति सहो गो ॥

(८) साहित्यिक और जन-भाषा का समन्वय

तुलसी ने विनयपत्रिका में अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा का परिचय भाषा में क्षेत्र में भी दिया है । उन्होंने उसे विद्वानों एवं सामान्य जनों के लिए समान रूप से उपयोगी बनाने के लिए उसमें संस्कृत गमित तथा बोलचाल की शब्दावली से युक्त दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है । यह उनकी समन्वय प्रवृत्ति का ही फल है ।

(क) साहित्यिक भाषा का एक उदाहरण देखिए—

श्रीरामचन्द्र कृपासु भजु मन, हरन भयभय-दाहन ।
 नवकंज-सोचन, कज-मुल, करकंज, पदकंजादन ॥
 कन्दर्प-अगनित-अमित-सुखि, नखनील मोरख सुखरं ।
 पदपीत मानहुँ तड़ित खचि, सुधि नौमि जनक-सुतावरं ॥

(ख) जन-भाषा का भी एक उदाहरण देखिए—

हार हौं भोर ही को आज ।
 रदत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥
 × × ×
 जनम की भूलो भिलारी हौं गरीब-निवाज ।
 पैठ भरि तुलसीहि जेवाइय भगति-सुधा-सुनाज ॥

निष्कर्ष यह कि विनयपत्रिका में भी तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का विभिन्न रूपों में परिचय मिलता है । उन्होंने काव्य और जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों में, जिनसे विनयपत्रिका का यत्किञ्चित् भी सम्बन्ध है, समन्वय स्थापित करने की सफल चेष्टा की है । यही चेष्टा उनकी काव्य-कला की वह अद्भुत विशेषता है, जिसके कारण वे विद्वानों एवं सामान्य जनो में समान रूप से आदर के पात्र बने हुए हैं ।

प्रश्न ३१—हिन्दी-साहित्य में 'विनयपत्रिका' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान निर्धारित कीजिए ।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ काव्य से हुआ । आदिकाल में जिन कवियों ने अपनी कृतियों में उसकी श्रौवृद्धि की, उनमें महाकवि चन्दबरदायी

और जन-प्रिय कवि जगन्निभ के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। विद्यापति को भी आदिकाल का ही कवि माना जाता है। इन सभी कवियों ने काव्य को सीमित क्षेत्रों में स्थान दिया। न तो वे जीवन के विविध रूपों को अभिव्यक्त कर सके और न काव्य और जीवन का सम्बन्ध ही जोड़ सके। उनके काव्यों में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने अथवा मनोरञ्जन करने की प्रवृत्तियों का आधिक्य रहा। भक्तिकाल आदिकाल के पश्चात् का युग है। इस युग में सूर, तुलसी, आपसी एवं हरीर—चार कवियों का, और उनके साथ मीरा, परमानन्ददास नन्ददास, बेशवदास, रहीम आदि अन्य श्रेष्ठ कवियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन कवियों के काव्य में विभिन्न रूपों में प्रथम बार जीवन की विराट् रूप में अभिव्यक्ति हुई; किन्तु रीतिकाल में बिहारी, देव, भूपण, पद्माकर, मगिराम आदि के हाथों में पड़कर हिन्दी-कविता की घारा पुनः सजीव क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी।

आधुनिक काल में आकर हिन्दी-काव्य में राष्ट्रवाद, कामिवाद, धार्मिकवाद, रहस्यवाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि अनेकवादों का उदय हुआ और उनके कारण कविता की घारा को बिस्तार तो मिला, किन्तु जीवन की गहराई छूट गई। पत्र, प्रसाद आदि गिने-बुने कवि ही उस गहराई को पहचान सके। प्रयोगवाद ने हिन्दी-काव्य को एक ऐसी दिशा में मोड़ दिया है, जिसमें उसके विकास की सम्पदा का आभास मिल रहा है।

हिन्दी-काव्य के विकास की इस परिधि में महारवि तुलसी का अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने धीरामचरितमानस, दिनपत्रिका, गोतावली, कवितावली, हृण्णीतावली, बरवै रामायण आदि १२ ग्रन्थ लिखे, जिनमें धीरामचरितमानस एवं दिनपत्रिका का प्रमुख स्थान है। इन सभी कृतियों में तुलसी की जिस काव्य-प्रतिभा की अभिव्यक्ति हुई है, वह उन्हें निरमरदेह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करती है। हम देख चुके हैं कि आदिकाल की हिन्दी-कविता अपनी सीमा तथा उद्देश्य के दृष्टिकोण से अत्यन्त सामान्य स्तर की थी, वही दशा रीतिकालीन कविता की रही और आधुनिक काल में विविध वादों ने उसके उन्मूलन के विचारों की देखाई अर्पित कर दी। रीतिकालीन काव्य में होने पड़ेवाले साहित्य की अविशाल प्रकृति की अभिव्यक्ति मिलती है और जीवन का वह विज्ञान रूप भी मिलता है जो अन्य वादों की कविता में नहीं मिलता; साथ ही रीतिकाल की कविता मुख्य विवेचनाएँ हैं, उन

सपरी भी पूर्णता हूँ तुमगी में मिलगी है। उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' लिख कर दिन प्रवृत्तियों को स्वीकार करने की चेष्टा की, वे सब उसमें स्थान न पा सरी। अतः उनके कवि का मयूरा रूप विनयपत्रिका में पूर्ण हुआ। इस दृष्टि से विनयपत्रिका के रचयिता महाकवि तुलसीदास जो का हिन्दी साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

तुलसी ने 'श्रीरामचरितमानस' में जीवन और उमरी सृष्टि की प्रकल्प-शीली में बिरतार से अभिव्यक्ति की है। 'विनयपत्रिका' में उनका मस्तिष्क और हृदय साकार हुआ है। हम उनमें उनकी आत्मा की सृष्टि की बिराद रूप में प्रतिष्ठा पाते हैं। आदिकाल से आधुनिक काल तक आत्मा की सृष्टि की अभिव्यक्ति का ऐसा विशाल प्रदर्शन हम विनयपत्रिका के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। यही कारण है कि विनयपत्रिका के रचयिता तुलसी की समता का कवि जब तक हिन्दी-साहित्य में दिखाई नहीं दिया।

आदिकालीन साहित्य में यदि शृंगार और सपर्व की प्रधानता थी, तो रीतिकालीन साहित्य में भी उन्ही दोनों तत्वों की प्रधानता रही। आधुनिक-काल में भी उमट-पनट कर ये ही दो तत्व विभिन्न बाधों के रूप में अभिव्यक्त हुए और हो रहे हैं। परन्तु जो जीवन-तत्त्व तुलसी अपनी विनयपत्रिका द्वारा दे गए, वे अन्य किसी काल की किसी एक ही कृति में पूर्ण रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सके और जो कुछ पूर्ववर्ती या परवर्ती कालों के कवियों ने दिया, उसकी तुलसी की विनयपत्रिका में उपेक्षा नहीं मिलती। विशेषता यह है कि तुलसी ने सभी तरफों में साम्य उपस्थित कर काव्य को जीवन का एक पूर्णरूप प्रदान किया है।

हम 'विनयपत्रिका' में कलियुग के विद्वत् तुलसी का सपर्व भी देखते हैं जो पूर्ववर्ती या परवर्ती कालों के कवियों के सपर्व से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं व्यापक है, क्योंकि वह वैयक्तिक-मात्र नहीं है, अपितु वह समष्टिगत भी है। जो शृंगार आदिकाल से आधुनिक काल तक भक्तिराज में सूर आदि के काव्य से होता हुआ आया, उसकी भी आत्मा और परमात्मा के प्रणय के रूप में विनयपत्रिका में परोक्ष अभिव्यक्ति मिलती है। अन्य भक्त कवियों ने यदि भक्ति की नवीनता हिन्दी-काव्य को दी तो तुलसी ने उसमें पूर्ण आध्यात्मिकता का मिश्रण कर उसे चरम सोमा को पहुँचा दिया। ईश्वर के अस्तित्व में अगाध विश्वास करके तुलसी ने भारत की आत्मा को पहचाना और उसका आदर

दिया । जिस उदार भूमिका में तुमसी ने मानवता की प्रतिष्ठा विनयपत्रिका में की, उस रूप में अन्य कोई कवि आज तक नहीं कर सका ।

वाक्य-कला की दृष्टि से भी तुमसी की विनयपत्रिका का हिन्दी-साहित्य में एक उच्च स्थान है । उसमें हमें भाषा, शैली और अलंकार-योजना का एक मृदु रूप मिलता है । वाक्य और संगीत का समन्वय—उसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है । सरसुत और सज्ज के मिश्रण और साहित्यिक स्तर पर दोनों के समन्वित रूप के प्रयोग का प्रयत्न सर्वप्रथम तुमसी ने ही किया । उनकी विनयपत्रिका इसका प्रमाण है । वाक्यशास्त्र और सङ्गीतशास्त्र का तो बँसा परिचय बहुत कवियों ने दिया है, परन्तु जीवन और काव्य के सभी क्षेत्रों में अद्भुत पाण्डित्य का जो रूप तुमसी की रचनाओं में, और विशेषकर 'विनय-पत्रिका' में मिलता है, वह अम्वय दुर्लभ है । भक्ति का ऐसा सरल काव्य हिन्दी-साहित्य में दूसरा नहीं । यदि तुमसी रवीन्द्र-मुग के कवि होते तो निश्चय ही वह मोवल पुरस्कार, जो रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' पर मिला, तुमसी की 'विनयपत्रिका' पर मिलता । हिन्दी-साहित्य में ऐसे महाप्राण कवि के विषय में यह कथन साय ही है कि 'सूर सती तुमसी रवि' तथा निम्न पंक्तियाँ किसी ने बड़ी सूक्ष्म-बुद्धि के साथ लिखी हैं कि—

अंगम तुमसी-तब लसै, आनन्द कानन-सेत ।

आकी कविता-मंजरी, राम-भँवर रस सेत ॥

प्रश्न ३२—भक्ति की परम्परा पर विचार करते हुए उसमें 'विनयपत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए ।

उत्तर—भक्ति का सम्बन्ध ईश्वर-प्रेम से है—'सा त्वस्मिन् परमप्रेमा रूपा' (भारत भक्ति-सूत्र—२) । शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र में भी ईश्वर में अतिशय अनु-रक्ति की ही भक्ति माना गया है—'सा परानुरक्तिरीदरे ।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति माना है, जिसका भी सोधा सम्बन्ध ईश्वर-प्रेम से ही है । अतः भक्ति की परम्परा का आरम्भ तभी से मानना चाहिए, जब से मनुष्य ने ईश्वर के अस्तित्व की स्वीकार किया । इस स्वीकृति के पीछे प्रेम-तत्त्व निहित है । अतः भक्ति के लिए प्रेम का विषय ईश्वर एवं प्रेमी हृदय—दोनों की आवश्यकता है, जो द्वैत का प्रतीक है । जब से मनुष्य ने यह द्वैत मानकर स्वीकार किया कि उसका का नियता कोई ईश्वर

है और मैं उससे प्रेम करता हूँ, तभी से भक्ति-परम्परा का विकास समझना चाहिए ।

ईश्वर की स्वीकृति द्वैत के अतिरिक्त द्वैत और द्वैताद्वैत रूपों में भी हुई है और इन रूपों में भी मनुष्य ने ईश्वर-प्रेम की अभिव्यक्ति की है । अतः निराकर ईश्वर के प्रति प्रदर्शित प्रेम को भी भक्ति की सीमा में ही माना गया है, भले ही वह भक्ति अव्यावहारिक हो । भारतीय साहित्य में भक्ति के इन दोनों रूपों की एक दीर्घ परम्परा मिलती है, यद्यपि अधिक विकास द्वैतमूलक साकारोपासना का ही हुआ है ।

वेदों में ईश्वर को प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों के माध्यम से पूजा गया है । मन्त्रों के ऋषि अगाध श्रद्धा और विश्वास हृदय में भर कर देवताओं को आमन्त्रित करते हैं । इस आमन्त्रण में सर्वत्र प्रेम का एक अन्तर्ध्यापी स्पर्श मिलता है । उपनिषदों में भी भक्ति को एक गहरी अन्तरधारा मिलती है । कठोपनिषद् में नविकेता के लिए भक्ति के माध्यम से ही परमधाम का द्वार खुलता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में तो स्पष्टतः 'भक्ति' शब्द का प्रयोग करते हुए यहाँ तक कहा गया है—

यस्तु वेवे परा भक्तिर्यथा वेवे तथा गुरो ।

तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य से ही भक्ति की परम्परा आरम्भ हो गई थी । आरम्भ में उसके पीछे कोई कामना रहती थी और उपनिषद्-काल तक उसने निष्काम भक्ति का रूप ले लिया था । ब्राह्मण और आरण्यक भी भक्ति के इन दोनों रूपों से प्रभावित मिलते हैं ।

दर्शन-साहित्य में वेदों से आरण्यकों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों तक प्रतिपादित भक्ति के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष स्वरूपों की व्यवस्थित आधार मिला है । आराध्य को पहचानने और मोक्ष पाने की आकांक्षा दर्शन का मूल तत्त्व रही है । बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा और परमात्मा के प्रेम एवं आतिथ्य चित्रण मिलता है । मुण्डकोपनिषद् में स्पष्टतः प्रत्यय परमात्मा को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा आवश्यक मानी गई है । श्वेताश्वतरोपनिषद् के छठे अध्याय में कहा गया है कि ईश्वर का स्वरूप उसी मनुष्य के हृदय में भासित हो सकता है, जो ब्रह्म में पूर्ण भक्ति रखता है ।

वैदिक साहित्य के अनिर्दिष्ट तन्त्रशास्त्र में भी भक्ति का स्वतन्त्र विकास मिलता है। मोक्ष-जो-दो और दृष्टि की सम्यक्ता में शिव और शक्ति के शक्तियों की पूजा का प्रमाण उपलब्ध है। जब आर्य-सम्यक्ता का विकास हुआ, तब शिव-भूजा नए रूप में प्रतिष्ठित हुई। आज भी उत्तर से मुद्र दक्षिण तक पुराने शिव-मन्दिर मिलते हैं, जो शिव की भक्ति का स्पष्ट प्रमाण हैं।

भागवत धर्म में भक्ति को सबसे अधिक स्थान मिला है। विष्णु पुराणों में विभिन्न कथाओं के माध्यम ॥ भक्ति के धर्म को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, जो आज भी भक्ति की महिमा को जीवित रखे हुए है। ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्रीमद्भागवत के द्वारा भक्ति का रहस्य सामान्य जनता तक पहुंचा है। राम और कृष्ण विष्णु के अवतार बनकर जन-जीवन में ईश्वर-रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। कृष्ण की सीलाएँ भक्ति की सरस बनाकर सामान्य जन को आकर्षित करने में समर्थ हुईं। कुछ से कुछ जन भी भगवान् की शिष्य लोक-सीलाओं का साक्षात्कार कर मोक्ष का मार्ग सरल बना लेते हैं।

श्रीमद्भागवत गीता को निष्काम भक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय किया गया है, किन्तु उनमें भक्ति ही प्रधान रही है। भगवान् कृष्ण जीव को सभी धर्मों का परिचय कर अपनी शरण में बुलाते हैं। सभी कर्मों, मन्त्रों और साधनाओं का ईश्वर में समर्पण भक्ति की उत्कृष्टता का ही एक स्रोत है। यही कारण है कि आज भी सबको के लिए भीना सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बना हुआ है।

नारायण ने जब सत्ता को मिटा देना और ईश्वर के अद्वैत स्वरूप की स्थापना की थी, तब लोगों को लगा था कि वे भक्ति के विरोधी हैं, किन्तु वास्तविकता यह थी कि वे स्वयं भी शक्ति के उत्तमक थे। अतः में उनका निराकार अद्वैत ब्रह्म भी भारत की धर्म-प्रवर्धन जनता के लिए शक्ति का दिव्य बन गया। एक समय ऐसा आया, जब साकार और निराकार के उदाहरणों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो गया। दक्षिण में बार आचार्य उग्र भगवत की ओर चले, किन्तु ने नारायण के अद्वैतवाद की शक्ति के क्षेत्र में नए दर में स्थापना की। ये आचार्य थे—

निम्बार्कचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य। निम्बार्कचार्य ने रामा एव कृष्ण की पूजा का प्रचार किया। मध्वाचार्य ने कर्म और ज्ञान

के भी भक्ति को ध्येय माना। कथाभाषार्थ ने उत्तर भाग में भक्ति की जड़ें
 गहरे गहरी करने का ऐतिहासिक कार्य किया। कृष्ण-भक्ति को उनके मित्राणों
 ने अध्यात्मिक बन लिया। उनका भक्ति मार्ग गुप्ति-मार्ग के नाम से प्रसिद्ध
 हुआ। विष्णु स्वामी के मित्राण्य प्रायः मत्वाचार्य के मित्राणों के मंत्र माने
 हैं। इन सब आचार्यों के अतिशिव रामानन्द का भी सर्वव्यापी भक्ति-
 प्रचारकों में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने राम की उन्नतता पर विशेष बल
 दिया है। राम-भक्ति की प्रेरणा देने वालों में वे प्रमुख स्थान रखते हैं।

काव्यात्मकता की दृष्टि से सभी ऋतु के उद्गातव्य देव की भक्ति-रचनाएँ
 विशेष महत्त्व रखती हैं। उनके पञ्चाङ्ग जगद्धर भट्ट ने स्तुति कुमुदात्रि
 निन्दनर मंथन के कवियों की भक्ति-रचना की जो प्रेरणा दी, वह हिन्दी के
 कवियों को भी प्रभावित करती मिलती है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि
 तुलसीदास को इसी उद्यम ने विनयपत्रिका लिखने की प्रेरणा मिली थी। दोनों
 उद्यमों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष भी है कि विनयपत्रिका की रचना
 पर स्तुति कुमुदात्रि का पर्याप्त प्रभाव है।

विनयपत्रिका में ईश्वर को राम के रूप में आराधना का विषय बनाया
 गया है। यह सब देवताओं ने ऊपर है। तुलसी उनकी अपना एक मात्र
 आराध्य मानते हैं। वे अन्य देवताओं को पूजते अवश्य हैं, किन्तु वे देवता
 उनका लक्ष्य नहीं हैं, लक्ष्य तो राम ही है। जिस प्रकार स्तुति-कुमुदात्रि को
 जगद्धर भट्ट ने पार्वती और लक्ष्मी की वन्दना करते हुए नाय के चरणों में
 अर्पित किया है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी सीता आदि से प्रार्थना करके
 राम के चरणों में अपनी विनयपत्रिका पहुँचाई है। भक्ति की यह पद्धति
 जिसमें ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण है, एकमात्र उसी से सब कुछ पाने की
 कामना और आशा है,—विनयपत्रिका की भक्ति की परम्परा में एक नितान्त
 नए स्थान पर स्थापित करती है। इस काव्य में राम तुलसी के उपास्य बन
 कर अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत के तीनों धर्मों से मुक्ति देते हैं। उनकी कृपा
 हो जाने पर संसार दुःख-मय नहीं रह जाता। तुलसी ने विनयपत्रिका में
 विनय, अनुशासन और प्रेम के माध्यम से भक्ति के क्षेत्र में जो समर्पण दिखाया
 है, वह समस्त भक्ति-परम्परा में नितान्त तथा महत्वपूर्ण है।

विनयपत्रिका से पूर्व संस्कृत और हिन्दी में जो भक्ति-काव्य लिखा गया,
 उससे भक्ति की परम्परा को उतना बल और विस्तार नहीं मिला था, जितना

विनयपत्रिका की भक्ति-भावना से मिसा है । उसमें दर्शन की प्रीति भावना की उच्चता, अभिव्यंजना की सशक्तता एवं भाषा की भाषितता—सबका सुन्दर समन्वय हुआ है ।

तुलसी के पूर्ववर्ती एवं समकालीन हिन्दी कवियों में भक्ति-काव्य में विनयपत्रिका जैसा न तो दार्शनिक गाम्भीर्य है, न भावों का स्वरूप ही इतना उदात्त मिलता है । बबीर खण्डन-मण्डन में उलझ गए हैं और सूर ने भी बहुत दूर तक उसी रास्ते को पकड़ लिया है । विनयपत्रिका दार्शनिक मगझों से बच कर गुड़ भक्ति के सोपानों पर चलकर ऊर्ध्व शिखर पर आरोहण करती है । इस काव्य के पश्चात् भी भक्ति का इतना सुन्दर काव्य नहीं रचा गया । अतः भक्ति की परम्परा में विनयपत्रिका अद्वितीय हिन्दी काव्य है ।

15/2

4

72



